“MAA” OMWATI COLLEGE OF EDUCATION HASSANPUR (PALWAL)

AFFILIATED CRS UNIVERSITY, JIND

B.ED – 1ST YEAR (2021-22)

NOTES PAPER- II

PEDAGOGY OF SST

MAA OMWATI EDUCATION TRUST

DELHI

E-mail: moce.principal@maaomwati.com

3 सामाजिक विज्ञान में व्यवहारात्मक उद्देश्य व उनका वर्गीकरण
(Taxonomy and Behavioural Objectives in Social Science)

परिचय
(Introduction)

बालक को उनकी ज्ञान की गुणवत्ता बढ़ाने, सूझ-बूझ में सुधार लाने तथा चिंतनशीलता को बढ़ाने के उद्देश्य से शिक्षा प्रदान की जाती है। सभी प्रयासों का अंतिम लक्ष्य उसके व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन लाना होता है। इसकी प्राप्ति के लिए उद्देश्यों को मुख्यतः तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है—शैक्षिक लक्ष्य, शैक्षिक उद्देश्य तथा अनुदेशनात्मक उद्देश्य। शैक्षिक लक्ष्य उस अन्तिम स्थिति को प्रकट करते हैं, जिसे हम प्राप्त करना चाहते हैं। प्रायः वे इतने व्यापक होते हैं, जिस तक पहुंचना सम्भव भी हो सकता है तथा असंभव भी। उदाहरण के तौर पर बच्चे का नैतिक या आध्यात्मिक विकास का उद्देश्य लीजिए। ये उद्देश्य इतने अस्पष्ट होते हैं कि उपलब्ध शैक्षिक ढांचे और कक्षा की परिस्थितियों में उनकी प्राप्ति कठिन ही नहीं, असम्भव भी हो सकती है।

इसके विपरीत अनुदेशनात्मक उद्देश्य बहुत ही संकुचित व विशिष्ट होते हैं। ये उद्देश्य निश्चित, संक्षिप्त, स्पष्ट, व्यावहारिक व प्राप्त करने योग्य होते हैं। कक्षा में सम्पन्न अनुदेशनात्मक कार्य के पश्चात विद्यार्थी जिस प्रकार के अपेक्षित व्यवहार का प्रदर्शन कर सकेंगे, उस व्यवहार को मापन योग्य उचित शब्दावली में व्यक्त करना ही अनुदेशनात्मक उद्देश्यों का प्रयोजन है। शैक्षिक उद्देश्य, शैक्षिक लक्ष्य एवं शिक्षण उद्देश्य के बीच की स्थिति है।

ये शैक्षिक लक्ष्यों से अधिक विशिष्ट, सीमित एवं सुनिश्चित होते हैं, परंतु शिक्षण उद्देश्य से कम विशिष्ट होते हैं। शैक्षिक उद्देश्य शिक्षा के सामान्य प्रयोजनों को सिद्ध करते हैं। किसी भी विषय के शिक्षण उद्देश्य शैक्षिक उद्देश्यों पर ही आधारित होते हैं और शैक्षिक उद्देश्य, शैक्षिक लक्ष्यों पर आधारित होते हैं। अनुदेशनात्मक उद्देश्यों को व्यावहारिक पदों में लिखा जाता है। इसके कई उपागम हैं, जिनमें सबसे ज्यादा प्रचलित उपागम रॉबर्ट मेगर का उपागम है।

इस अध्याय के अन्तर्गत हम उद्धेश्यों के वर्गीकरण, उनकी पहचान, अनुदेशनात्मक उद्देश्यों का वर्गीकरण व उनको व्यावहारिक पदों में लिखना तथा व्यावहारिक पदों में लिखने के विभिन्न उपागमों का अध्ययन करेंगे। प्रस्तुत अध्याय की विषय-वस्तु को सरल व स्पष्ट बनाने के लिए निम्न शीर्षकों के तहत इसका अध्ययन किया जा सकता है—

- उद्देश्य, शैक्षिक उद्देश्य तथा अनुदेशनात्मक उद्देश्यों में अंतर व संबंध
- शैक्षिक एवं अनुदेशनात्मक अथवा व्यवहारात्मक उद्देश्यों का वर्गीकरण
- उद्देश्यों को व्यावहारिक शब्दावली में लिखना
- व्यावहारिक शब्दावली में लिखने के उपागम—रॉबर्ट मेगर उपागम, रॉबर्ट मिलर उपागम, आर.सी.ई.एम. उपागम व एन.सी.ई.आर.टी. उपागम।

उद्देश्य, शैक्षिक उद्देश्य तथा अनुदेशनात्मक उद्देश्यों में अंतर व संबंध (Distinction and Relationship between Aims, Educational Aims and Instructional Objectives)

❑ शैक्षिक उद्देश्यों तथा अनुदेशनात्मक उद्देश्यों में अंतर व संबंध को स्पष्ट कीजिए।
(Explain the Distinction and Relationship between Educational Aims and Instructional Objectives.)

उत्तर : किसी भी कार्य को शुरू करने से पहले उसके उद्देश्य निश्चित करना अत्यंत आवश्यक है। उद्देश्यों के अभाव में किसी भी कार्य को एक निश्चित दिशा प्रदान नहीं की जा सकती है। उद्देश्य एक ऐसा पूर्व-निर्धारित लक्ष्य होता है जो व्यक्ति की ऐच्छिक क्रियाओं को प्रभावित करता है तथा व्यक्ति जब तक उस लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर लेता है तब तक वह चिंतन करता रहता है तथा नई-नई योजनाएं बनाता रहता है। जैसे-जैसे वह लक्ष्य के नजदीक पहुंचता जाता है, उसकी क्रियाओं में परिवर्तन होता रहता है और उस लक्ष्य को प्राप्त करने का अर्थ होता है, शिक्षा के उद्देश्य की प्राप्ति। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य छात्रों की गुणवत्ता में वृद्धि करना तथा साथ-ही-साथ उनकी सूझ-बूझ में सुधार लाना होता है, जिसके परिणामस्वरूप उनके व्यवहार में परिवर्तन लाया जा सके। अनुदेशनात्मक उद्देश्य पढ़ाई जाने वाली विषय-सामग्री का विश्लेषण करने के बाद निश्चित किए जाते हैं तथा ये योजनाबद्ध तरीके से तैयार किए जाते हैं। दूसरी तरफ उद्देश्य कुछ शब्दों का समूह होता है, जो किसी कोर्स से संबंधित वांछित परिणामों को दर्शाता है।

उद्देश्यों को प्रमुख रूप से निम्नलिखित दो क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है–

1. शैक्षिक उद्देश्य (Educational Aims)
2. अनुदेशनात्मक उद्देश्य (Instructional Objectives)

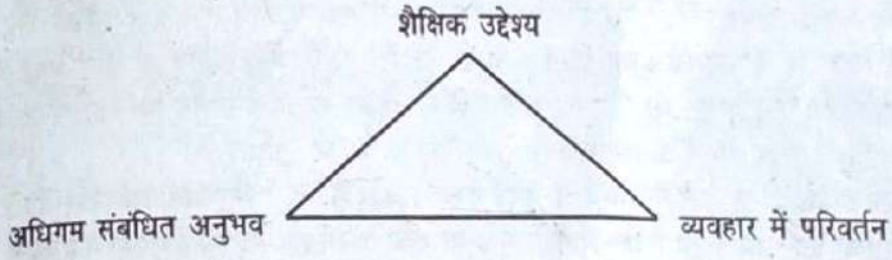

शैक्षिक तथा अनुदेशनात्मक उद्देश्यों में प्रमुख अंतर यह होता है कि शैक्षिक उद्देश्यों का संबंध मुख्य रूप से शिक्षा प्रणाली से होता है तथा ये अधिक विस्तृत भी होते हैं। दूसरी तरफ अनुदेशनात्मक उद्देश्यों का मुख्य रूप से संबंध कक्षा-कक्ष शिक्षण से होता है तथा ये संकुचित भी होते हैं। इसके अतिरिक्त शैक्षिक उद्देश्यों का मुख्य स्रोत दर्शन होता है, जबकि अनुदेशनात्मक उद्देश्यों का मुख्य स्रोत मनोविज्ञान होता है। अनुदेशनात्मक उद्देश्य छात्र-व्यवहार में लाए जाने वाले परिवर्तनों के कथन होते हैं। शैक्षिक उद्देश्य सामान्य होते हैं, जबकि अनुदेशनात्मक उद्देश्य विशिष्ट होते हैं। शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए लम्बे समय की आवश्यकता होती है। अनुदेशनात्मक उद्देश्य संकुचित होते हैं। शैक्षिक उद्देश्य अप्रत्यक्ष होते हैं जबकि अनुदेशनात्मक उद्देश्य प्रत्यक्ष होते हैं। उदाहरण के तौर पर यदि शैक्षिक उद्देश्य राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास करना है तो अनुदेशनात्मक उद्देश्य राष्ट्रीय एकता की परिभाषा देना व राष्ट्रीय एकता के सम्प्रत्यय की व्याख्या करना आदि हो सकते हैं।

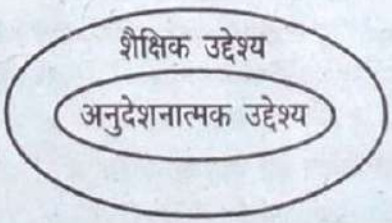

हास्टन के अनुसार, **"अनुदेशनात्मक उद्देश्य व्यावहारिक रूप से व्यक्त की गई वह योग्यता अथवा कौशल है जिसे छात्र सफल शिक्षण के द्वारा ग्रहण तथा विकसित करता है।"** **(An instructional objective is an ability or skill expressed in behavioural form which the pupil acquires or develops where the teaching has been successful in doing what it set out to do.")–Houston**

दूसरे शब्दों में अनुदेशनात्मक उद्देश्यों की रचना छात्र-व्यवहार में लाए जाने वाले परिवर्तनों के पदों में की जाती है। यह छात्र के शिक्षण के उपरांत व्यवहार तथा उसके अंतिम व्यवहार से संबंधित होते हैं। शिक्षण का उद्देश्य छात्र के प्रारम्भिक व्यवहार में परिवर्तन लाना होता है। अनुदेशनात्मक उद्देश्य छात्र के आरम्भिक व्यवहार में लाए जाने वाले परिवर्तनों को बताते हैं। यह पढ़ाए जाने वाले पाठ से संबंधित होते हैं और यह पढ़ाए जाने वाले पाठ की विषय-वस्तु के द्वारा छात्र के व्यवहार में लाए जाने वाले परिवर्तनों के पदों में व्यक्त किए जाते हैं। यह शिक्षण उपरांत छात्र उपलब्धि के सूचक होते हैं तथा बताते हैं कि शिक्षण उपरांत छात्र का व्यवहार कैसा होगा। दूसरे शब्दों में यह पढ़ाने के बाद छात्र के अपेक्षित व्यवहार के पदों में होते हैं।

बी.एस. ब्लूम ने अनुदेशनात्मक उद्देश्य पद के स्थान पर शैक्षिक उद्देश्य पद का प्रयोग किया। उसके अनुसार, **"शैक्षिक उद्देश्यों से अभिप्राय उन परिवर्तनों से है जिन्हें हम बालक के व्यवहार में लाने का प्रयास करते हैं। शैक्षिक उद्देश्यों की सहायता से केवल पाठ्यक्रम का निर्माण ही नहीं किया जाता एवं अनुदेशन के लिए निर्देशन ही नहीं दिया जाता, अपितु यह मूल्यांकन की प्रविधियों के विशिष्टीकरण में भी सहायक होते हैं।"** **("Educational Objectives are not only the goals towards which the curriculum is shaped and towards which instruction is guided, but they are also the goals that provide the detailed specification of the construction and use of evaluation techniques.")–B.S. Bloom**

अनुदेशनात्मक उद्देश्य एवं शैक्षिक उद्देश्यों की बी.एस.ब्लूम के द्वारा दी गई परिभाषा के आधार पर हम कह सकते हैं कि अनुदेशनात्मक उद्देश्य एवं शैक्षिक उद्देश्य छात्र व्यवहार में लाए जाने वाले परिवर्तनों के कथन होते हैं। इनकी सहायता से पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाता है एवं इनकी प्राप्ति के लिए अनुदेशन एवं शिक्षण किया जाता है। अनुदेशनात्मक उद्देश्य अथवा शैक्षिक उद्देश्य केवल अनुदेशन एवं शिक्षण का आधार ही नहीं होते, अपितु यह अनुदेशन अथवा शिक्षण के मूल्यांकन का भी आधार है।

अनुदेशनात्मक उद्देश्यों के अर्थ के संबंध में रोबर्ट मेगर ने कहा है कि, **"अनुदेशनात्मक उद्देश्यों का कथन ऐसे शब्दों या प्रतीकों का ऐसा समूह है जो आपकी एक या एक से अधिक शैक्षिक इच्छाओं को व्यक्त करता है। इससे आप जान सकें कि छात्र क्या करेगा, कब अपनी उपलब्धि को प्रदर्शित करेगा और आपको कैसे पता चलेगा कि वह कब ऐसा कर रहा है।"**

अतः अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि अनुदेशनात्मक उद्देश्य, शैक्षिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के संसाधन (resources) हैं। अनुदेशनात्मक उद्देश्य अधिगमकर्ताओं के व्यावहारिक परिवर्तन के रूप में प्राप्त होते हैं। इसलिए इन्हें व्यावहारिक उद्देश्य के नाम से भी जाना जाता है।

शैक्षिक एवं अनुदेशनात्मक अथवा व्यवहारात्मक उद्देश्यों का वर्गीकरण
(Taxonomy of Educational and Behavioural Objectives)

- **व्यवहारात्मक अथवा अनुदेशनात्मक उद्देश्यों के वर्गीकरण से आप क्या समझते हैं? ब्लूम के द्वारा दिए गए व्यवहारात्मक उद्देश्यों के वर्गीकरण की व्याख्या कीजिए।**
  (What do you understand by the term taxonomy of behavioural objectives? Explain Bloom's Taxonomy of Behavioural Objectives.)

अथवा

- **ब्लूम द्वारा दिए गए उद्देश्यों के वर्गीकरण की व्याख्या कीजिए।**
  (Explain the Bloom's Taxonomy of Objectives.)

उत्तर। शिक्षण कार्य के विशिष्ट परिणामों की व्याख्या करने वाले शिक्षण व अधिगम उद्देश्य एक व्यापक वर्ग, जिसे शैक्षिक उद्देश्य कहा जाता है, में समाविष्ट हो जाते हैं। इन शैक्षिक उद्देश्यों का सीधा सम्बन्ध बच्चे के व्यवहार के ज्ञानात्मक (cognitive-knowing), भावात्मक (Affective feeling) व क्रियात्मक (Psycho-motor-doing) तीनों पक्षों (Domains) से है। इस प्रकार से कक्षा के कार्यों के फलस्वरूप विशिष्ट और संक्षिप्त शिक्षण-अधिगम परिणामों के रूप में शैक्षिक उद्देश्यों का विश्लेषण किया जा सकता है।

व्यवहारात्मक एवं शैक्षिक उद्देश्यों (Behavioural and educational objectives) का वर्गीकरण करने की दिशा में अनेक विद्वानों द्वारा प्रयास किए गए हैं, परन्तु बी. एस. ब्लूम (B.S.Bloom) तथा उनके सहयोगियों द्वारा 1956 ई. में किया गया प्रयास सराहनीय है, जिसने अपनी रचना "शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण" (Taxonomy of Educational objectives) में इसका वर्णन किया है। टेक्सोनोमी (Taxonomy) का अर्थ वर्गीकरण करने की एक प्रणाली है, जिसके द्वारा शैक्षिक उद्देश्यों को बहुत ही सहज एवं स्पष्ट बना दिया गया है। व्यवहारात्मक एवं शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण इस आधार पर किया गया है कि शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया किसी पाठ्य-पुस्तक या अधिगम अनुभव द्वारा विद्यार्थियों के व्यवहार में परिवर्तन लाने का एक प्रयास है। व्यवहार के तीन पक्ष हैं—ज्ञानात्मक पक्ष (Cognitive-knowing domain), भावात्मक पक्ष (Affective-feeling domain), तथा क्रियात्मक पक्ष (Psychomotor-doing domain)। ब्लूम ने इन तीनों पक्षों के आधार पर व्यवहारात्मक या शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया है—

(i) ज्ञानात्मक उद्देश्य (Cognitive objectives)
(ii) भावात्मक उद्देश्य (Affective objectives)
(iii) क्रियात्मक उद्देश्य (Psychomotor Conative objectives)

प्रथम ज्ञानात्मक पक्ष का वर्गीकरण ब्लूम तथा अन्यों ने 1956 ई. में, दूसरे भावात्मक पक्ष का वर्गीकरण ब्लूम तथा उसके सहयोगी क्रथवाल व मरीआ (Krath wohl and Maria-1964) ने तथा तीसरे क्रियात्मक पक्ष का वर्गीकरण सिम्पसन (Simpson-1966) तथा हेरो (Harrow-1972) ने प्रस्तुत किया। इन सभी पक्षों का संक्षिप्त वर्गीकरण इस प्रकार है—

I. ज्ञानात्मक पक्ष के शैक्षिक व व्यवहारात्मक उद्देश्यों का वर्गीकरण (Taxonomy of Educational and Behavioural Objectives in the Cognitive Domain) : ब्लूम ने ज्ञानात्मक पक्ष के उद्देश्यों को 'सरल से कठिन' (Simple to complex) तथा शिक्षण-अधिगम के निम्न स्तर से आरम्भ करके ऊँचे से ऊँचे स्तर तक ले जाने के दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए छः वर्गों में विभाजित किया है।

ये वर्ग इस प्रकार हैं—

(i) ज्ञान (Knowledge)
(ii) बोध (Understanding or Comprehension)
(iii) प्रयोग (Application)
(iv) विश्लेषण (Analysis)
(v) संश्लेषण (Synthesis)
(vi) मूल्यांकन (Evaluation)

साथ ही उन्हें प्रत्येक वर्ग के अधिगम परिणामों को भी स्पष्ट करने का प्रयास किया है, जैसे—

(1) **ज्ञान (Knowledge) (सबसे निम्न स्तर)**
(a) विशिष्टताओं का ज्ञान (Knowledge of specifics)
(i) पदों का ज्ञान (Knowledge of Terminology)
(ii) विशिष्ट तथ्यों का ज्ञान (Knowledge of specific facts)
(b) विशिष्ट ज्ञान से सम्बन्ध स्थापित करने के उपायों एवं परम्पराओं का ज्ञान (Knowledge of ways and means of dealing with specific)

(i) परम्पराओं का ज्ञान (Knowledge of conventions)
(ii) प्रचलन तथा तारतम्य का ज्ञान (Knowledge of trends and sequences)
(iii) वर्गीकरण एवं वर्गों का ज्ञान (Knowledge of classifications and categories)
(iv) कसौटियों का ज्ञान (Knowledge of criteria)
(v) विधियों का ज्ञान (Knowledge of methodology)
(c) ज्ञान के किसी क्षेत्र के सार्वभौमिक तथा अमूर्त प्रत्ययों का ज्ञान (Knowledge of universals and abstractions in a field)
(i) प्रनियमों तथा सामान्यीकरण का ज्ञान (Knowledge of Principles and generalisations)

(2) बोध (Comprehension) (ज्ञान के बाद दूसरे क्रम का निम्न स्तर)

(i) अनुवाद (Translation)
(ii) अर्थापन (Interpretation)
(iii) बहिर्वेशन (Extrapolation)

(3) प्रयोग (Application) (तीसरे क्रम का निम्न स्तर)

(i) तथ्यों, नियमों, अधिनियमों तथा सिद्धांतों का सामान्यीकरण (Generalization of Facts, Laws, Theories and Principles)
(ii) छात्रों की कमजोरियों का निदान (Diagnosis of Pupil's Weakness)
(iii) छात्रों द्वारा नियमों का प्रयोग (Application of Laws by Pupils)

(4) विश्लेषण (Analysis) (उच्च स्तर)

(i) तत्वों का विश्लेषण (Analysis of Elements)
(ii) सम्बन्धों का विश्लेषण (Analysis of Relationship)
(iii) संगठनात्मक प्रनियमों का विश्लेषण (Analysis of Organisational Principles)

(5) संश्लेषण (Synthesis) (उच्चतर स्तर)

(i) एक नवीन संप्रेषण का उत्पादन (Production of Unique Communication)
(ii) किसी प्रस्तावित कार्यवाही के लिए योजना बनाना (Production of a plan or a proposed set of operations)
(iii) अमूर्त सम्बन्धों के समुच्चय का निर्माण (Derivation of a set of abstract relations)

(6) मूल्यांकन (Evaluation)

(i) आन्तरिक साक्ष्यों के आधार पर मूल्य निर्धारण (Judgement in terms of internal evidence)
(ii) बाह्य कसौटियों के आधार पर मूल्य निर्धारण (Judgement in terms of external criteria)

दूसरे शब्दों में ब्लूम द्वारा प्रस्तुत किये गये ज्ञानात्मक पक्ष के उपरोक्त वर्गीकरण को हम इस प्रकार से स्पष्ट कर सकते हैं–

(1) ज्ञान (Knowledge)–इस वर्ग में विद्यार्थियों को पाठ्यवस्तु के विशिष्ट तथ्यों, पदों, परम्पराओं, प्रचलनों, वर्गों, कसौटियों, प्रनियमों, सामान्यीकरणों, सिद्धान्तों एवं संरचनाओं का प्रतिभिज्ञान (Recognition) तथा प्रत्यास्मरण (Recall) कराने का प्रयास किया जाता है तथा कक्षा में इसके लिए समुचित परिस्थितियाँ उत्पन्न की जाती हैं।

(2) बोध (Compreliension)–ज्ञान वर्ग में जिन तथ्यों, पदों, परम्पराओं, वर्गों तथा प्रनियमों आदि का प्रयोग किया जाता है, जिससे विद्यार्थी उस प्राप्त ज्ञान को अपने शब्दों में अनुवाद करके व्यक्त कर सकें तथा बाह्य गणना और उल्लेख कर सकें। ज्ञान के बिना बोध नहीं हो सकता। अतः ज्ञान वर्ग इस वर्ग के लिए आवश्यक आधार है।

(3) प्रयोग (Application)–किसी भी तथ्य नियम के सिद्धान्त को सामान्यीकरण करने, उनकी

कमजोरियों का निदान करने तथा पाठ्यवस्तु का प्रयोग करने के लिए यह आवश्यक है कि पहले उस वस्तु का ज्ञान व बोध होना चाहिए। तब ही विद्यार्थी उचित ढंग से अपनी योग्यतानुसार व्यक्तिगत परिस्थितियों में उस ज्ञान का प्रयोग कर सकेंगे। अतः ज्ञान व बोध वर्ग इस वर्ग के आधार हैं।

(4) **विश्लेषण (Analysis)**—इस वर्ग में विद्यार्थियों को तथ्यों, नियमों या सिद्धान्तों आदि का विश्लेषण, उनके सम्बन्धों का विश्लेषण तथा उनका व्यवस्थित सिद्धान्तों के रूप में विश्लेषण करना होता है। अधिगम की गई वस्तु के तत्त्वों को इस प्रकार अलग-अलग करने और उनका सम्बन्ध स्थापित करने के लिए ज्ञान, बोध व प्रयोग के उद्देश्यों की प्राप्ति आवश्यक है।

(5) **संश्लेषण (Synthesis)**—विद्यार्थी पहले चार वर्गों के उद्देश्यों की प्राप्ति के पश्चात् ही सीखी गई पाठ्यवस्तु के तथ्यों, नियमों, सिद्धान्तों आदि के तत्त्वों को एक नवीन रूप में व्यवस्थित करके एक नया संप्रेषण, योजना या प्रारूप तैयार किया जाता है।

(6) **मूल्यांकन (Evaluation)**—किसी भी शिक्षण कार्य की सफलता इस बात पर निहित है कि विद्यार्थी यह निर्णय ले सकें कि उन्होंने जो भी अधिगम किया है वह मूल्य की दृष्टि से उपयोगी है या नहीं। अतः इस स्तर पर अन्तःसाक्ष्यों व बाह्य कसौटियों के आधार पर बच्चों में पाठ्य-वस्तु के तथ्यों, सिद्धान्तों और नियमों आदि के बारे में निर्णय लेने की योग्यता विकसित होती है।

II. **भावात्मक पक्ष के शैक्षिक एवं व्यवहारात्मक उद्देश्यों का वर्गीकरण (Taxonomy of Educational and Behavioural Objectives in the Affective Domain)** : ब्लूम तथा उसके सहयोगियों कथवाल और मरिया ने 1964 ई० में भावात्मक पक्ष के उद्देश्यों को निम्न स्तर से उच्च स्तर पर ले जाते हुए जिस रूप में प्रस्तुत किया है, वे निम्न हैं—

(1) **आग्रहण पर ध्यान देना (Receiving or Attending)** : यह सबसे निम्न स्तर का उद्देश्य है, जैसे—
(i) चेतना (Awareness)
(ii) ग्रहण करने की तत्परता (Willingness to Receive)
(iii) नियन्त्रित या चयनात्मक अवधान (Controlled or Selected Attention)

(2) **अनुक्रिया (Responding)** :
(i) अनुक्रिया करने की सम्मति देना (Acquiescence in Responding)
(ii) अनुक्रिया करने की तत्परता (Willingness to Respond)
(iii) अनुक्रिया करने में संतुष्टि (Satisfaction in Response)

(3) **आंकलन (Valuing)** :
(i) किसी मूल्य की स्वीकृति (Acceptance of Value)
(ii) किसी मूल्य के लिए अधिक लगाव या अभिरुचि (Preference for a Value)
(iii) प्रतिबद्धता (Commitment)

(4) **संगठन (Organisation)** :
(i) एक मूल्य प्रणाली को धारण करना (Conceptualisation of a Value)
(ii) एक मूल्य प्रणाली का संगठन करना (Organisation of a Value System)

(5) **मूल्य प्रणाली का चरित्रीकरण अथवा विशेषीकरण (Characterisation by a Value or Value Complex)** :
(i) सामान्यीकृत समुच्चय (Generalised set)
(ii) चरित्रीकरण या विशेषीकरण (Characterisation)

इस प्रकार कहा जा सकता है कि Bloom तथा उसके सहयोगियों Krath Wohl तथा Maria ने भावात्मक पक्ष के शैक्षिक उद्देश्यों को पाँच भागों में विभाजित किया है, जिनको निम्न ढंग से स्पष्ट किया जा सकता है—

(1) **आग्रहण या ध्यान देना (Receiving or Attending)**–यह भावात्मक पक्ष का पहला स्तर भावात्मक विकास की दृष्टि से सबसे पहले मानव मूल्यों की अनुभूति करानी होती है। अनुभूति के लिए न किसी प्रकार के उद्दीपन (Stimulus) का होना अत्यन्त आवश्यक है।

इस उद्दीपन के प्रति विद्यार्थियों को आवश्यक रूप से आकृष्ट होना चाहिए और उसके प्रति अनुक्रि (Response) करने की इच्छा उत्पन्न होनी चाहिए। इसलिए इस वर्ग में अध्यापक का काम विद्यार्थियों प्रस्तुत विषय-वस्तु के प्रति पर्याप्त रूप से आकर्षित करना तथा इस प्रकार से अभिप्रेरित करना है कि विद्यार्थि में मानवीय मूल्यों को भली-भाँति ग्रहण करने के लिए पर्याप्त इच्छा जाग्रत हो जाए। इच्छा जाग्रत होने ध्यानाकर्षित होने की यह स्थिति विद्यार्थियों में उचित समय तक बनी रहे, इस कार्य हेतु पर्याप्त चेष्टा क ही अध्यापक का कर्तव्य होता है।

(2) **अनुक्रिया (Responding)**–भावात्मक विकास का दूसरा स्तर विद्यार्थियों की उचित अनुक्रि से सम्बन्धित है। इस वर्ग के लिए आग्रहण वर्ग एक आधार का काम करता है। विद्यार्थियों में मूल्यों उचित रूप से ग्रहण करने की इच्छा जब जाग्रत हो जाती है और जब वह शैक्षिक गतिविधियों सुरुचिपूर्वक भाग लेना प्रारम्भ कर देता है तभी उसके द्वारा की हुई अनुक्रियाओं की पहचान हो सकती विद्यार्थी अनुक्रिया करने में समर्थ हों, इसके लिए उन्हें अनुक्रिया करने के लिए तैयार किया जाना चाहि उनमें अनुक्रिया करने की इच्छा जाग्रत करनी चाहिए और वे अनुक्रिया करने में पर्याप्त सन्तुष्टि का अनु करें, इसके लिए आवश्यक प्रयत्न करने चाहिए। इस प्रकार से यह वर्ग विद्यार्थियों में आत्माभिव्यक्ति (Self-expression), आत्म-विकास (Self-development) और उससे प्राप्त सन्तुष्टि को विकसि करने में सहायता करता है।

(3) **आंकलन (Valuing)**–इस वर्ग की क्रियाएँ अपने दोनों वर्गों की क्रियाएँ व उनके परिणामों आधारित हैं। जब कोई विद्यार्थी किसी वस्तु या विचार के प्रति पर्याप्त रूप से आकर्षित होकर उसके प्र अपनी अनुक्रिया व्यक्त करता है, तो उसकी यह अनुक्रिया, उस वस्तु या विचार उतने ही मूल्यवान होते जितना कि उन्हें वह अपने प्रयोजन पूर्ति का साधन समझता है।

(4) **संगठन (Organisation)**–जैसे-जैसे विद्यार्थी किसी वस्तु या विचार के मूल्य को ध्यान में रखक उसके प्रति अपनी व्यवहार सम्बन्धी अनुक्रियाएँ करना सीख जाता है, वैसे-वैसे इस दिशा में आगे बढ़ते हुए वह कई प्रकार के व्यक्तिगत और सामाजिक मूल्यों को ग्रहण करता है तो कई परिस्थितियों में उसे ऐसा आभा होता है कि ये मूल्य अन्तर्विरोधी हैं। उनके इस टकराव को रोकने के लिए तथा इन मूल्यों को भली-भाँति अभि करने के लिए मूल्यों के स्वरूप और संप्रत्यय का ज्ञान कराना आवश्यक हो जाता है। इस ज्ञान के बाद ही इनक व्यवस्थापन और संगठन करना होता है।

(5) **मूल्यों का चरित्रीकरण या विशेषीकरण (Characterisation by a Value or Valu Complex)**–भावात्मक पक्ष के विकास के इस स्तर तक पहुँचने के लिए इसके पहले चारों वर्गों के उद्देश्य की प्राप्ति आवश्यक है। यहाँ आकर विद्यार्थी के व्यक्तिगत व सामाजिक मूल्यों के समन्वय से उत्पन्न वि मूल्य प्रणाली अथवा चरित्र की भूमिका बन चुकी होती है, उसे विशेष रूप प्रदान करने का प्रयत्न किया जा है। चरित्र सम्बन्धी यह स्तर व्यक्ति का वह अपेक्षाकृत स्थायी तथा वैयक्तिक रूप होता है, जिसके आध पर उसके व्यक्तित्व की पहचान होती है।

III. **क्रियात्मक पक्ष के शैक्षिक व व्यवहारात्मक उद्देश्यों की वर्गीकरण (Taxonomy of Educationa and Behavioural Objectives in the Conative or Psychomotor Domain)** : बालक को अपने भौतिक तथा सामाजिक वातावरण के साथ समायोजन करना बड़ा आवश्यक है। इस सही ढंग से समायोजन करने के लिए बालक का क्रियात्मक या मनोशारीरिक पक्ष से सम्बन्धित उद्देश्यों को वर्गीकृत कर का सबसे पहला प्रयत्न **सिम्पसन** (Simpson) ने 1966 ई. में किया। बाद में **हैरो** (Harrow) ने 1972 ई में इससे आगे कुछ विकास किया। हैरो ने इन उद्देश्यों को छः वर्गों में विभाजित किया है। यहाँ वर्गीकृत अंगों का आवश्यक वर्णन किया जा रहा है–

(1) **सहज क्रियात्मक अंग संचालन (Reflex Movements)**—व्यवहार के क्रियात्मक पक्ष का यह वर्ग सबसे निम्न स्तर का है। ये क्रियाएँ किसी वस्तु के सम्पर्क में आते ही बिना किसी इच्छा के अपने आप ही होने लगती हैं। ये स्वचलित स्नायुतन्त्र व मस्तिष्क के द्वारा संचालित व नियन्त्रित होती हैं। इसलिए ये क्रियाएँ जन्म से मृत्यु तक विकसित होती रहती हैं। इनके बिना जीवन असम्भव है। जब बच्चा अपने चारों ओर फैले किसी उद्दीपन के सम्पर्क में आता है तो कोई न कोई प्रतिक्रिया अनजाने में ही व्यक्त करता है, जैसे—हाथ पर चींटी गिरते ही हाथ झटक देता है। इस प्रकार से मानव के सभी प्रकार के व्यवहार इन सहज क्रियाओं पर आधारित हैं। अतः इस वर्ग में विद्यार्थी की इन सहज क्रियाओं को और भी सहज बनाने का प्रयास किया जाता है।

(2) **आधारभूत अंग संचालन (Basic Fundamental Movements)**—प्रथम वर्ग की सहज क्रियाओं के आधार पर ही बालक में स्वाभाविक आधारभूत अंग संचालन सम्बन्धी क्रियाएँ विकसित होती हैं। किसी प्रकार का आदेश मिलते ही बच्चा इस प्रकार का अंग संचालन करने लगता है। परन्तु वह इन क्रियाओं पर अधिक देर तक नियन्त्रण नहीं कर सकता है, जैसे—उछलना, कूदना, मनुष्य के भावी जीवन में सुदृढ़ एवं सशक्त अंग संचालन की क्षमता विकसित करने के लिए इस प्रकार की क्रियाओं का प्रशिक्षण आवश्यक है।

(3) **शारीरिक योग्यताएँ (Physical Abilities)**—शारीरिक अंगों के उचित संचालन से ही शारीरिक योग्यता विकसित होती है तथा शारीरिक योग्यता से ही अंग संचालन में सहायता मिलती है। अतः अंग संचालन सम्बन्धी क्रियाओं में और भी परिपक्वता लाने के लिए बालक की शक्ति और सामर्थ्य को विकसित करने का प्रयास करना ही इस वर्ग का उद्देश्य है।

(4) **प्रत्यक्षीकरण योग्यताएँ (Perceptual Abilities)**—इन योग्यताओं को अर्जित करने के लिए पेशीय क्रियाएँ व शारीरिक योग्यताएँ आधार का काम करती हैं। प्रत्यक्षीकरण योग्यताएँ बच्चे की कर्मेन्द्रियों व ज्ञानेन्द्रियों के सामंजस्य पर निर्भर करती हैं। बच्चा जान-बूझ कर व अपनी इच्छानुसार इन योग्यताओं को अर्जित करने का प्रयास करता है। इन कौशलों की सहायता से बच्चा वातावरण में फैले उद्दीपनों को पहचानते तथा समझते हुए उनके साथ समायोजन करने में सफल होता है। साथ ही अपनी पाँचों इन्द्रियों से प्राप्त ज्ञान में विभेद करने की योग्यता अर्जित करता है, जैसे—छू कर (By touching), देखकर (By seeing), सुनकर (By hearing), सूंघकर (By smelling), पहचानना तथा अन्तर बताना। इन्हीं योग्यताओं की सहायता से बाद में उच्च कोटि की पेशीय क्रियाएँ विकसित होती हैं।

(5) **कौशलयुक्त अंग संचालन (Skilled Movements)**—पहले चारों वर्गों में अर्जित योग्यताओं तथा क्रियाओं के आधार पर कौशलयुक्त अंग संचालन सम्बन्धी क्रियाएँ विकसित होती हैं। इनके लिए बच्चों को पूर्ण प्रशिक्षण लेना होता है। तभी वह इस प्रकार के कौशलयुक्त जटिल अंग संचालन की क्रियाएँ कर सकता है। पहले इन क्रियाओं को जान-बूझकर सीखना पड़ता है, फिर इनका अभ्यास करना पड़ता है और तब अच्छी तरह से सीख लेने के पश्चात् विद्यार्थी बिना किसी प्रयास के इन क्रियाओं को पूर्ण-कौशल के साथ प्रदर्शित करने में समर्थ हो जाता, जैसे—तैरना या नृत्य कौशल आदि।

(6) **सांकेतिक संप्रेषण (Non-Discurssive Communications)**—सांकेतिक संप्रेषण वह व्यवहार हैं, जिनके द्वारा विद्यार्थी बिना कहे ही अपने भावों को पूर्ण कौशल के साथ अभिव्यक्त कर सके। मनोपेशीय क्रियाएँ इस कार्य हेतु आवश्यक आधार का काम करती हैं। अतः पहले पूर्व कौशल अर्जित कर लेने के पश्चात् विद्यार्थी में इतनी योग्यता आ जाती है कि वह सामान्य मेखाकृति से लेकर पूर्ण रूप से कौशलयुक्त व्यवहार एवं अभिनय के द्वारा अपने भावों का संप्रेषण कर सकता है।

निष्कर्ष (Conclusion) : उपरोक्त अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का एक महत्त्वपूर्ण तथ्य व्यवहारात्मक उद्देश्यों का विशिष्टकरण है। माध्यमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रमों में व्यवहारात्मक उद्देश्यों पर अधिक बल दिया जाता है। वास्तव में बी.एस. ब्लूम ने शिक्षा पद्धति में अपने मूल्यांकन व वर्गीकरण उपागम के माध्यम से क्रांति उत्पन्न कर दी थी। अतः कहा जा सकता है कि भले ही

4 सामाजिक विज्ञान शिक्षण के मूल्य
(Values of Teaching Social Science)

परिचय
(Introduction)

प्रत्येक समाज जहां एक ओर अपने बच्चों को शिक्षा द्वारा कुछ विशेष प्रकार का ज्ञान तथा कौशल प्रदान करने का यत्न करता है, वहां उसके साथ-साथ वह उनमें कुछ गुणों का विकास करने का भी प्रयत्न करता है, जो उनको अच्छा नागरिक बनने में सहायता करें। साधारण भाषा में इस प्रकार की शिक्षा को ही **'मूल्य शिक्षा'** कहा जाता है। प्राचीनकाल में जब सार्वजनिक शिक्षा अस्तित्व में नहीं आई थी तो इस प्रकार की शिक्षा केवल धार्मिक संस्थाओं में ही प्रदान की जाती थी। विभिन्न विश्वासों को मानने वाले इस प्रकार की शिक्षा का प्रचार करते थे। इस प्रकार की शिक्षा के केन्द्र प्रायः धार्मिक स्थल ही हुआ करते थे। उस समय इस प्रकार की शिक्षा के कुछ लाभ थे, तो कुछ हानियां भी थीं। जहां एक ओर धर्म पर आधारित नैतिक शिक्षा समाज में एकता स्थापित करने में सहायक होती थी, तो वहीं दूसरी ओर मानव समाज में यह अशान्ति व युद्ध भड़काने में भी सहायक होती थी, परंतु समकालीन शिक्षा प्रणाली में मूल्यों का यह स्वरूप पूर्णतया बदल गया है। अब शिक्षा ने औपचारिक व वैज्ञानिक स्वरूप धारण कर लिया है। इस कारण से बालकों को मूल्यों की शिक्षा देने की जिम्मेदारी **'सामाजिक विज्ञान'** विषय पर आ पड़ी है। वैसे तो सभी शिक्षण विषयों में मूल्यों का अपना महत्त्व होता है, परंतु सामाजिक विज्ञान का मानवीय स्वरूप होने के कारण इसमें मूल्यों का विशेष महत्त्व होता है। वास्तव में मूल्य एक व्यक्ति के चरित्र को अर्थ तथा शक्ति प्रदान करते हैं। मूल्य एक व्यक्ति के निर्णय, चयनों, अभिवृत्तियों, व्यवहारों, स्वप्नों तथा संबंध का दर्पण होते हैं। शिक्षाविदों का मानना है कि आज के दौर में अंतर्राष्ट्रीय भावना जैसे-मूल्यों का महत्त्व काफी बढ़ गया। इस तरह के मूल्यों की प्राप्ति का सर्वोत्तम माध्यम सामाजिक विज्ञान शिक्षण ही है। इस विषय के शिक्षण से विश्व में शांति की स्थापना की जा सकती है, क्योंकि यह विषय मानवीय संबंधों की विवेचना पर ही आधारित है। इसके माध्यम से मानव समाज का कल्याण की ओर अग्रसर किया जा सकता है। प्रस्तुत अध्याय में हम निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत सामाजिक विज्ञान शिक्षण के मूल्यों का अध्ययन करेंगे, जो इस प्रकार हैं–

- **मूल्यों का अर्थ व उनकी पारिभाषिक व्याख्या**
- **मूल्यों के स्रोत व मूल्यों के प्रकार**
- **मूल्य शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्त्व**
- **मूल्यों का वर्गीकरण**

मूल्यों का अर्थ, परिभाषा, प्रकार व स्रोत
(Meaning, Definitions, Types and Sources of values)

❑ **मूल्यों के अर्थ, परिभाषा, प्रकार व स्रोतों की विवेचना कीजिए।**
(Discuss the meaning, definitions, types and sources of values.)

उत्तर : सामाजिक विज्ञान एक ऐसा विषय है, जो बालक के सामाजिक विकास, समाज की प्र

अंतर्राष्ट्रीय भाईचारे की भावना व सौहार्दता को बढ़ाने में विशेष योगदान देता है। विविध प्रकार के मूल्यों की प्राप्ति में भी इसका विशेष योगदान है। मूल्यों के एकीकृत शिक्षण की दृष्टि से तो इस विषय की उपयोगिता और भी ज्यादा बढ़ जाती है।

I. मूल्यों का अर्थ (Meaning of Values) : दार्शनिक दृष्टि से मूल्य शब्द के साथ जब तक किसी विशेषण का प्रयोग नहीं होता तब तक इसे अच्छाई के पर्याय रूप से ग्रहण किया जाता है। साधारण शब्दों में जो अच्छा है, वह मूल्य है। भारतीय संस्कृति में **'श्रेयस'** शब्द इसी अर्थ का द्योतक है। मनोवैज्ञानिक, मूल्य शब्द को व्यावहारिक शब्दावली में प्रयोग करते हुए इसे प्राप्त विकल्पों में से किसी सशक्त विकल्प चयन के रूप में परिभाषित करते हैं। **आलपोर्ट** ने इसे **उत्तम चयन (Preferred Choice)** तथा **मोरिस** ने इसे **उत्तम व्यवहार (Preferential Behaviour)** का नाम दिया है। कहने का अर्थ यह है कि हम किस प्रकार का आचरण करें, इसके लिए हमारे संकल्प के कई विकल्प हो सकते हैं और उसे व्यवहार के मार्गदर्शन के रूप में स्वीकार कर लेते हैं, तो वह मूल्य कहलाता है। मूल्य के अर्थ को निम्न प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है–

डब्ल्यू.एम. रायबर्न के अनुसार, "मूल्य वह है जो मानव की इच्छा की संतुष्टि करता है।"

आलपोर्ट के मतानुसार, "मूल्य ऐसे व्यवहार को कहते हैं जिसे हम **प्राथमिकता** देते हैं।"

रॉल्फ बोरसोडी के शब्दों में, "मूल्य संवेगात्मक निर्णय हैं। वे ज्ञान से नहीं वरन भावनाओं से उत्पन्न होते हैं। वे बौद्धिक निर्णय नहीं अपितु संवेगात्मक होते हैं। ("Values are emotional judgements. They are generated by feeling not cognitions: They are emotional, not intellectual judgements.")

प्रो. काहन के मतानुसार, "वास्तव में मूल्य वे मार्गदर्शक सिद्धांत हैं, जो मनुष्य के व्यवहार व क्रियाओं को प्रभावित करते हैं।"

आर.के. मुखर्जी के अनुसार, "मूल्य वे सामाजिक मान्यता प्राप्त प्रेरणाएं तथा लक्ष्य होते हैं, जिनका अनुकूलन, अधिगम या सामाजीकरण द्वारा अन्तःकरण हो जाता है तथा जो आत्मसात् अधिगम स्तर पर आकांक्षाएं बन जाती हैं।" ("Values are socially approved drives and goals that are internalised through the process of conditioning, learning or socialization and that become subjective preferences, standards and aspirations.")

मूल्यों की उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि मूल्य विचारों, आदर्शों, आकांक्षाओं तथा विश्वासों का सम्मिलित रूप है। इनका चुनाव समाज द्वारा इनकी उपयोगिता के आधार पर किया जाता है, जिनका उद्देश्य समाज का मार्गदर्शन करना है।

II. मूल्यों के प्रकार (Types of Values) : मूल्य कई प्रकार के होते हैं, जिन्हें सामाजिक, नैतिक, सांस्कृतिक तथा धर्म निरपेक्षता के आधार पर कई रूपों में बांटा जा सकता है। इस आधार पर मूल्यों की निम्न सूची बनाई जा सकती है–

(1) सत्य	(2) करुणा	(3) स्वच्छता
(4) शिष्टाचार	(5) अनुशासन	(6) अहिंसा
(7) सहयोग	(8) साहस	(9) कर्तव्यपरायण्ता
(10) नागरिकता	(11) व्यक्ति की गरिमा	(12) समानता
(13) मित्रता	(14) स्वतंत्रता	(15) भद्रता
(16) ईमानदारी	(17) पहलकदमी	(18) न्याय
(19) नेतृत्व	(20) राष्ट्रीय एकता	(21) नियमितता
(22) कुशलता	(23) आत्मविश्वास	(24) आत्मसम्मान
(25) समाज सेवा की भावना	(26) सहनशीलता	(27) बन्धुता
(28) आज्ञाकारिता	(29) आभार	(30) अच्छा व्यवहार

(31) मानवता (32) निष्ठा (33) दयालुता
(34) राष्ट्रीय चेतना (35) देशभक्ति (36) शांति
(37) अवकाश समय का सदुपयोग (38) आत्मनियंत्रण (39) उत्तरदायित्व की भावना

मूल्यों के उपरोक्त प्रकारों को देख कर कहा जा सकता है कि "जो अच्छा है, वह मूल्य है।" गिनती की दृष्टि से मूल्यों की कोई सीमा नहीं है। समाज व राष्ट्र की परिस्थिति के अनुसार ही इनका अच्छा या बुरा स्वरूप होता है। व्यक्ति आपसी भाईचारे व प्रेम के साथ जिन गुणों को आत्मसात् करता है, वह ही वास्तविक मूल्य है।

III. मूल्यों के स्रोत (Sources of Values) : मूल्यों के स्रोतों को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

1. **संस्कृति अथवा सामाजिक रीति-रिवाज (Culture and Social Customs) :** प्राचीन युग की तरह आज भी मूल्यों के स्रोत में संस्कृति तथा सामाजिक रीति-रिवाजों का काफी महत्त्व है। सत्य, अहिंसा, परोपकार व विश्व-बन्धुत्व जैसे मूल्य हमें संस्कृति से ही प्राप्त हुए हैं। अतिथि सत्कार, आचार-विचार, खानपान, संयुक्त परिवार प्रणाली, विवाह प्रणाली, भाषा, संगीत, नृत्य व चित्रकला जैसे हमारे मूल्यों के विकास में सामाजिक रीति-रिवाजों का विशेष महत्त्व है।
2. **धर्म (Religion) :** धर्म नैतिक सिद्धांतों तथा मूल्यों का सबसे बड़ा स्रोत है। प्रेम, सहयोग, सहानुभूति, दया, करुणा, परोपकार, त्याग, समाज-सेवा जैसे मूल्यों के विकास में धर्म का विशेष योगदान रहा है। धर्म वह है, जो व्यक्ति को पतन की ओर जाने से रोके तथा नैतिक मार्ग का अनुसरण करने के लिए प्रेरित करे। बट्रैण्ड रस्सल के विचारानुसार, "धर्म सामाजिक कृतज्ञता की भावना का स्रोत है।" ("Religion is the source of the sense of social obligation.") सभी धर्मों का निचोड़ एक है और सभी धर्म सत्य मूल्यों को धारण करने की प्रेरणा देते हैं।
3. **दर्शन (Philosophy) :** सभी शिक्षा संबंधी दर्शनों में शिक्षा के मूल्यों पर प्रकाश डाला गया है। विभिन्न दार्शनिक विचारधाराएं अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार मूल्यों का प्रतिपादन करती हैं और उसके अनुसार आचरण पर बल देती हैं। 'सत्यम, शिवम् एवं सुन्दरम्' जैसे आध्यात्मिक मूल्यों को दर्शन आत्मसात् करता है, इस प्रकार दर्शन मूल्यों का आवश्यक स्रोत है।
4. **साहित्य (Literature) :** साहित्य का सीधा संबंध मानव व समाज से है। साहित्य समाज का प्रतिरूप व दर्पण है। अतः कोई समाज किन सिद्धांतों पर विश्वास करता है, वही उसका साहित्य कहलाता है। साहित्य सामाजिक मूल्यों का सबसे बड़ा स्रोत है। इसलिए अच्छा साहित्य मानव में रुचियों, उचित दृष्टिकोण, सकारात्मक भावनाओं जैसे मूल्यों का निर्माण व विकास करता है।
5. **विज्ञान (Science) :** आज का युग तकनीक तथा विज्ञान का युग है, जिसने मानव जीवन को बहुत ज्यादा प्रभावित किया है। विज्ञान के कारण ही हम विश्व-बंधुत्व और विश्व नागरिकता की बात कर रहे हैं। वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने अंधविश्वास व असामाजिक आडम्बरों पर कड़ा प्रहार किया हैं। तर्क व चिंतन जैसे वैज्ञानिक मूल्यों के निर्माण व विकास में विज्ञान का विशेष योगदान है।
6. **राजनीतिक व्यवस्था (Political System) :** प्रत्येक राष्ट्र की अपनी राजनीतिक व्यवस्था तथा उसी के अनुसार उस देश के मूल्यों को निर्धारित किया जाता है। स्वतंत्रता, समानता, न्याय, भ्रातृत्व व प्रजातांत्रिक भावना इसी राजनीतिक व्यवस्था से निर्मित व विकसित हुए मूल्य हैं। भारत में प्रजातांत्रिक मूल्यों के विकास पर विशेष बल दिया जाता है।

निष्कर्ष (Conclusion) : उपरोक्त अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि मूल्यों को व्यक्ति पलब्धियों में उच्चतम शिखर पर रखा जाता है। ये व्यक्ति के चरित्र को अर्थ तथा शक्ति प्रदान करते ादर्श व सकारात्मक मानवीय संबंधों की स्थापना में इनका विशेष योगदान होता है। मूल्यों की उत्पत्ति

अथवा निर्माण के स्रोत अनेक हैं, जिनमें संस्कृति, रीति-रिवाज, धर्म, साहित्य, दर्शन, विज्ञान व राजनीतिक व्यवस्था जैसे स्रोत शामिल हैं।

मूल्य शिक्षा की आवश्यकता तथा महत्त्व (Need and Importance of Value Education)

❑ मूल्य शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्त्व पर एक टिप्पणी कीजिए। (Write a note on the need and importance of Value Education.)

उत्तर : आधुनिक समाज में सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक वातावरण दिन-प्रतिदिन खराब होता जा रहा है। धर्म के प्रति आस्था कम होती जा रही है तथा अपने स्वार्थ हेतु शक्ति तथा ज्ञान का अनुचित प्रयोग हो रहा है काला-बाजारी, भ्रष्टाचार, आतंकवाद, अनुशासनहीनता व गुंडागर्दी प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। ऐसे माहौल अथवा वातावरण में सुधार के लिए मूल्यों पर आधारित शिक्षा का दिया जाना अति आवश्यक है। अब शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में सामाजिक, आर्थिक, नैतिक व आध्यात्मिक जैसे मूल्यों का प्रचार-प्रसार करना जरूरी हो गया है। मूल्य शिक्षा की आवश्यकता तथा महत्त्व को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

1. **बालक के सर्वांगीण विकास के लिए (For All Round Development of Child) :** औपचारिक आधुनिक शिक्षा केवल बौद्धिक विकास करती है, जबकि वर्तमान में हमें ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है, जो बालकों का सामाजिक, आर्थिक, नैतिक व आध्यात्मिक क्षेत्रों में भी समुचित विकास कर सके। भारतीय शिक्षा आयोग ने मूल्यों के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि, "आज हम विनाश के कगार पर खड़े हैं, प्रत्येक व्यक्ति अशांत है और इस अशांति का कारण है, मूल्यों का विनाश।"

2. **व्यावसायिक कुशलता के विकास के लिए (For Development of Vocational Efficiency) :** शिक्षा द्वारा व्यक्तियों में व्यावसायिक कुशलता जैसे आर्थिक मूल्यों का विकास कर बेरोजगारी की समस्या से काफी हद तक छुटकारा पाया जा सकता है। आधुनिक युग में बेराजगारी, आतंकवाद, भ्रष्टाचार जैसी घटनाएं लगातार बढ़ती जा रही हैं। इसलिए व्यावसायिक पाठ्यक्रमों का प्रचलन ज्यादा से ज्यादा किया जाना चाहिए।

3. **सामाजिक मूल्यों के विकास के लिए (For Development of Social Values) :** लोकतांत्रिक समाज में सामाजिक मूल्यों का काफी अधिक महत्त्व होता है। पदवी, अवसर के प्रति समानता का आदर व धन का समान बंटवारा आज के समय कुछ ऐसे सामाजिक मूल्य हैं, जिनका विकास अवश्य ही किया जाना चाहिए।

4. **मानवतावादी दृष्टिकोण के विकास के लिए (For Development of Huministic Values) :** आज भारत ही नहीं वरन् पूरे विश्व में मानवतावादी दृष्टिकोण का अभाव है। आज समय की मांग है कि हम मानवतावादी दृष्टिकोण को विकसित करने का प्रयास करें। इसलिए सामाजिक विज्ञान के अन्तर्गत इस तरह के मूल्यों की शिक्षा देना बहुत जरूरी है।

5. **पर्यावरण की संभाल के लिए (For Preservation of Environment) :** वन कटाव, भूमि कटाव, पंजीकृत तकनीक द्वारा औद्योगिकरण व कृषि उत्पादों पर बल देने के कारण प्राकृतिक संसाधनों का अति रूप में इस्तेमाल किया जा रहा है। प्राकृतिक संसाधनों का शोषण विश्व की जनसंख्या की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए लालची प्रवृत्ति के कारण हो रहा है। इसलिए पर्यावरण की सुरक्षा व संरक्षण हेतु मूल्य शिक्षा देना अति आवश्यक है।

6. **छोटे परिवार का महत्त्व (Importance of Small Family) :** जनसंख्या की सीमा निर्धारित करने से राष्ट्र का जीवन उत्तम व सुविधाजनक बन सकता है। इसलिए तत्कालीन परिस्थितियों में छोटे परिवार का महत्त्व बढ़ गया। व्यक्तियों में इस बात की समझ मूल्य शिक्षा देने से उत्पन्न की जा सकती है। मूल्य शिक्षा देने के लिए सामाजिक विज्ञान विषय से बेहतर अन्य कोई विषय नहीं है।

7. **प्रजातांत्रिक मूल्यों के विकास के लिए (For Development of Democratic Values)** : प्रजातन्त्र व लोकतांत्रिक प्रशासित देश में मूल्यों का विकास अति आवश्यक है। इस तरह की शिक्षा में नागरिकों में प्रेम, सहानुभूति, सहयोग तथा दया जैसी भावनाओं के विकास को प्रोत्साहन देना व बालकों इन मूल्यों को विकसित करने का प्रयास शामिल होना चाहिए।

8. **वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास के लिए (To Develop Scientific Outlook)** : आज युग विज्ञान का युग है। ऐसे में प्राचीन रुढ़ियों, परम्पराओं या अन्धविश्वासों के साथ चिपके रहना स्वाभाविक विकास के लिए सही नहीं है। आज वैज्ञानिक दृष्टिकोण को एक सामाजिक मूल्यों के रूप में स्वीकार किया गया है, ताकि व्यक्ति अपनी रुढ़िवादी मान्यताओं को छोड़कर प्रत्येक बात को वैज्ञानिक ढंग से सोच सके, 'तथ्य' तथा 'प्रचार' में अंतर कर सके।

9. **संस्कृति की सुरक्षा के लिए (For Preservation of Culture)** : आज विभिन्न तरह की परिस्थितियों ने हमारी संस्कृति को इतना प्रदूषित कर दिया है कि सच्चाई, ईमानदारी, भलाई व कर्तव्यनिष्ठता जैसे सांस्कृतिक मूल्यों का पतन हो रहा है। अतः आज समय की मांग है कि यदि हम अपनी गौरवपूर्ण संस्कृति की सुरक्षा करना चाहते हैं तो मूल्यों की शिक्षा अवश्य दी जानी चाहिए।

10. **धर्मनिरपेक्ष समाज के विकास के लिए (For Development of Secular Society)** : धर्म निरपेक्षता स्वतंत्रता का मुख्य सामाजिक मूल्य है। सभी धर्मों के प्रति आदर, पूजा करने की स्वतंत्रता व नागरिक कार्यों की व्यवस्था करते समय धर्म को बीच में लाना धर्मनिरपेक्ष मूल्यों की श्रेणी में आते हैं। इन मूल्यों के अन्तर्गत सभी धर्मों के लोगों को समान अवसर प्रदान करने चाहिए। राज्य को धर्म के आधार पर किसी तरह का भेदभाव नहीं करना चाहिए।

निष्कर्ष (Conclusion) : उपरोक्त अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि मूल्यों की शिक्षा द्वारा नागरिक को जागृत करना हमारा परम कर्तव्य है। व्यक्तियों को न केवल हमें मूल्यों के विषय में बताना है, अपितु उनके महत्त्व से भी उनको अवगत करवाना जरूरी है। मूल्यों की शिक्षा का अंतिम उद्देश्य बालकों को मूल्यों का प्रशिक्षण देना ही नहीं है, अपितु ऐसा वातावरण पैदा करना है, जिससे बच्चे स्वयं उचित और अनुचित का ज्ञान प्राप्त कर सकें। जो मूल्य उचित व हितकर हैं, उन्हें वे जीवन में धारण कर सकें तथा समाज का कल्याण कर सकें।

मूल्यों का वर्गीकरण
(Classification of Values)

❑ **मूल्यों के वर्गीकरण पर एक टिप्पणी लिखिए।**
(Write a note on the classification of Values)

अथवा

❑ **मूल्यों के वर्गीकरण से आपका क्या अभिप्राय है? व्याख्या कीजिए।**
(What do you mean by classification of Values? Explain.)

उत्तर : दार्शनिकों तथा शिक्षाविदों के विचारों के आधार पर मूल्यों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है–

(i) नैतिक मूल्य (Moral Values)–प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के लिए नैतिक मूल्य उसके जीवन आधार हैं। इन मूल्यों में ईमानदारी, सत्यता, अच्छा चरित्र, दयालुता, आत्म-अनुशासन, परमात्मा से यु व्यक्तित्व तथा सादा जीवन व उच्च विचार, सहयोग, सद्भावना, भाईचारा, मातृत्व, आत्मनियंत्रण, विश्वसनीय मेहनत, उत्तरदायित्व, न्यायप्रियता, समानता आदि अनेकों नैतिक मूल्य हैं, जो चरित्र निर्माण में सहायक हैं।

(ii) सामाजिक मूल्य (Social Values)–मानव सामाजिक प्राणी है। समाज में रहते हुए उसने अ

जीवन को सुंदर, सुखी, सभ्य व रुचिकर बनाने के लिए कुछ सामाजिक मूल्यों का निर्माण किया है, जैसे—अनुशासन बनाए रखना, परोपकार, जनहित, सहनशीलता, सामुदायिक सहयोग की भावना, राष्ट्र बन्धुत्व व विश्व-बन्धुत्व की भावना, व्यक्तिगत स्वार्थ को छोड़कर समाज के हित में मानवता के कल्याण के कार्य करना। समाज का कल्याण सर्वोपरि मानना ही सामाजिक मूल्य है।

(iii) धार्मिक मूल्य (Religious Values)—धार्मिक मूल्यों में पूजा, भक्ति और विश्वास के प्रति दृढ आस्था सम्मिलित है। धार्मिक मूल्यों को परमपिता परमात्मा में विश्वास, धार्मिक पुस्तकों में लिखित नैतिक संहिता के अनुसार कार्य करने के प्रयत्न के रूप में परिभाषित किया जाता है। धार्मिक मूल्यों का आधार हमारी संस्कृति है, जिसमें विभिन्न ग्रन्थों, उपनिषदों व साहित्यिक व धार्मिक ग्रन्थों का उल्लेख है, जिसे मानकर हम धार्मिक मूल्यों को अपनाते हैं।

(iv) लोकतांत्रिक मूल्य (Democratic Values)—इस लोकतांत्रिक समाजवादी व्यवस्था में लोकतांत्रिक मूल्य जैसे व्यक्ति का आदर, जाति, लिंग, धर्म व रंग के आधार पर आधारित व्यक्तियों में विभिन्नता का न होना इसके मूल्य हैं। इसमें धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक आधार प्रदान किए जाते हैं, जिसमें सभी धर्मों के प्रति, आदर, सामाजिक न्याय व लोकतांत्रिक संस्थाओं के लिए आदर भी शामिल है।

(v) आर्थिक मूल्य (Economic Values)—यह मूल्य धन व भौतिक सम्पदा से संबंधित होते हैं। बाजार की कीमतों से आर्थिक मूल्यों का पता चलता है। इसके अन्तर्गत बाजार की वह सभी वस्तुएं आती हैं, जिन्हें खरीदा जा सकता है। जिस व्यक्ति के पास धन व भौतिक सम्पदा है उसे आर्थिक मूल्यों के आधार पर धनवान व अमीर की संज्ञा दी जाती है व समान की दृष्टि से देखा जाता है और समाज व देश की उन्नति व हित में उनका योगदान सर्वोपरि है।

(vi) सुखदायी मूल्य (Hedonistic Values)—ऐसे मूल्य जिनसे सुख व आनंद प्राप्त किया जा सकता है। सुख, सुविधा, प्रेम, स्नेह, लगाव व दुख, संकट, परेशानी से दूर रहना ही इनका लक्ष्य होता है। व्यक्ति समाज में हमेशा सुख प्राप्त करने के मूल्यों में लगा रहता है।

(vii) सौन्दर्यात्मक मूल्य (Aesthetic Values)—प्राकृतिक सौन्दर्य तथा कलात्मक रचना इस मूल्य की विशेषता है। इसमें साहित्य हेतु प्रेम, संगीत, नाच, हस्तकला, चित्रकला, कविता, कलात्मक रचना, प्राकृतिक सौन्दर्य आदि क्रियाएँ शामिल हैं, जो समाज में सौन्दर्यात्मक मूल्यों को प्राप्त करने में सहायक हैं।

(viii) ज्ञान मूल्य (Knowledge Values)—व्यक्ति समाज में विभिन्न जानकारियों से अवगत होता है ताकि वह अपना, परिवार का, समाज का, देश का विकास कर सके। वह ज्ञान तथा सत्य की खोज में प्रयत्नशील रहता है। इसमें व्यक्ति विभिन्न सिद्धान्तों, नियमों व वैज्ञानिक तथ्यों का अध्ययन करता है। वह अधिक से अधिक ज्ञान को खोजने का इच्छुक रहता है। इस प्रकार ज्ञान के मूल्य कभी खत्म न होने वाले व नई दिशा में खोजे जाने वाले वह मूल्य हैं जो ज्ञान मूल्य कहलाते हैं।

(ix) शारीरिक मूल्य (Physical Values)—यह मूल्य शारीरिक स्वास्थ्य व उसकी सुन्दरता के मूल्य हैं। शरीर का स्वास्थ्य अच्छा बनाए रखने के लिए व उसमें सुन्दरता लाने के लिए इन मूल्यों का महत्त्व है। कालिदास ने कहा है कि **"शरीर माध्यम खलु धर्म साधनम्"** अर्थात् शरीर ही धर्म के साधन का मूल्य है।

(x) शक्ति मूल्य (Power Values)—उच्च शक्ति प्राप्त व्यक्ति ही समाज की अगुवाई कर सकता है व दूसरों पर अपना अधिकार दिखा सकता है। विभिन्न क्षेत्रों में शक्ति मूल्य होते हैं। जैसे—आर्थिक सम्पन्नता, कार्यकुशलता, तकनीकी व वैज्ञानिक सम्पन्नता, औद्योगिक सम्पन्नता आदि शक्ति के विभिन्न मूल्यों के रूप हैं।

(xi) मनोरंजन मूल्य (Entertainment or Recreation Values)—जीवन को उन्नत बनाने के लिए खेल, मनोरंजन, अवकाश काल का सदुपयोग आदि मनोरंजन मूल्य कहलाते हैं, जो जीवन के सर्वांगीण विकास में सहायक हैं।

(xii) आन्तरिक व व्यक्तिनिष्ठ मूल्य (Internal and Subjective Values)—आन्तरिक मूल्य वह

मूल्य है जो आत्मिक संतुष्टि प्रदान करते हैं व सभी के अंदर निहित हैं व नैतिकता के आधार हैं, जैसे—सत्य, शिव, सुन्दर, ये स्वयं साध्य हैं। ये किसी अन्य वस्तु के द्वारा प्राप्त किए जाने वाले साधन नहीं हैं बल्कि स्वयं सिद्ध हैं। ये किसी न किसी रूप में व्यक्ति को आध्यात्मिक शांति प्रदान करते हैं।

(xiii) बाह्य मूल्य (Extrinsic Values) या वस्तुनिष्ठ मूल्य (Objective Values)—यह वह मूल्य है जिससे हम किसी लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं या यह वह साधन मात्र है जिनकी सहायता से हम तरह-तरह की वस्तुएं व सामग्री खरीद सकते हैं। उदाहरण के तौर पर धन या दौलत बाह्य मूल्य माने जाते हैं क्योंकि उनका कोई स्वयं मूल्य नहीं है बल्कि वह तो साधन मात्र हैं।

(xiv) साधन मूल्य (Sources Values, Ultimate Values)—ब्रूबेकर के अनुसार, "साधन मूल्य वे हैं जो अच्छे माने जाते हैं, क्योंकि वह कुछ प्राप्त करने के लिए अच्छे होते हैं।" ("Sources values are those what are judged good, because they are good for something.")

यह मूल्य अस्थायी, वस्तुनिष्ठ व बाह्य होते हैं। साधन मूल्य परमूल्यों की ओर ले जाते हैं, परम मूल्य नैतिक मूल्य हैं। धन, खेलकूद, व्यायाम और भोजन इत्यादि जीवन रक्षा के साधन होने के कारण साधन मूल्य हैं। सम्मान व अधिकार भी जीवन में सहायक होने के कारण साधन मूल्य हैं लेकिन न्याय, सत्य साधन न होकर स्वयं साध्य हैं। साधन मूल्य अस्थायी (Temporary values) कहलाते हैं।

निष्कर्ष (Conclusion) : उपरोक्त अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि सामाजिक विज्ञान विषय एक मूल्यवान तथा विस्तृत विषय है। नैतिक मूल्य, सामाजिक मूल्य, धार्मिक मूल्य, लोकतांत्रिक मूल्य, आर्थिक मूल्य, सुखदायी मूल्य, सौन्दर्यात्मक मूल्य, ज्ञान मूल्य, शारीरिक मूल्य, शक्ति मूल्य, मनोरंजक मूल्य, आन्तरिक व व्यक्तिनिष्ठ मूल्य, बाह्य मूल्य व साधन मूल्यों को विकसित करने में सामाजिक विज्ञान विषय से ज्यादा उपयोगी विषय अन्य नहीं हो सकता है। सामाज का नैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आध्यात्मिक व कलात्मक विकास मूल्यों की प्राप्ति से ही संभव है।

लघु उत्तरीय प्रश्न
(Short Answer Type Questions)

❑ मूल्य शिक्षा के महत्त्व को संक्षेप मे स्पष्ट कीजिए।

उत्तर : मूल्य शिक्षा के महत्त्व को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है—

(i) सत्य, न्याय, अहिंसा, शांति व विश्व-बन्धुत्व की भावना जैसे मूल्य ही मनुष्य को अंधेरे से रोशनी की ओर ले जा सकते हैं।

(ii) मूल्यों की शिक्षा ही मनुष्य को इस बात के लिए प्रेरित करती है कि विज्ञान का प्रयोग विनाशकारी कार्यों में न करके मानवता के हित में करना चाहिए।

(iii) शिक्षा ही सर्वोत्तम साधन है जो सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का विकास करके मनुष्य को अच्छा नागरिक बना सकती है।

(iv) शिक्षा के मूल्यों से मनुष्य में आत्मशक्ति का विकास होता है।

❑ मूल्य शिक्षा देने के क्या उद्देश्य होने चाहिए?

उत्तर : स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि **"हमें ऐसी शिक्षा देनी चाहिए, जिससे व्यक्ति अपने पैरों पर खड़ा हो सके।"** मूल्य शिक्षा के उद्देश्यों को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है—

(i) शिक्षा ऐसी होनी चाहिए कि बच्चे में सामाजिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों का विकास हो सके।

(ii) बेरोजगारी की समस्या से निजात पाने के लिए बालकों में व्यावसायिक कुशलता जैसे मूल्यों का विकास किया जाना चाहिए।

5 सामाजिक विज्ञान का अन्य विषयों के साथ संबंध
(Relationship of Social Science with other Subjects)

परिचय
(Introduction)

विद्यालय स्तरीय शिक्षा के स्वरूप पर यदि हम नजर डालते हैं तो हमें ज्ञात होगा कि स्तर अनुसार प्रत्येक कक्षा में छात्रों को एक साथ कई विषय पढ़ाए जाते हैं। अलग-अलग विषय होते हुए भी इनको पूर्णतया अलग नहीं माना जा सकता है, क्योंकि विभिन्नता होने पर भी सबका एक ही मुख्य लक्ष्य है, बालकों का सर्वांगीण विकास करना। सभी विषय अपनी प्रकृति के अनुसार बालक के सर्वांगीण विकास में अपना योगदान देते हैं। इसलिए हम यह कतई नहीं कह सकते हैं कि किसी विशिष्ट विषय की शिक्षा से बालक का सर्वांगीण विकास किया जा सकता है। सभी विषय ज्ञान के भंडार हैं तथा विद्यालय स्तर की शिक्षा के अनुरूप इनकी उपयोगिता प्रमाणित होती है। सभी विषयों की विषय-वस्तु का मुख्य ध्येय बालक में सामाजिक, राष्ट्रीय तथा मानवीय मूल्यों का विकास करना होता है। अपने लक्ष्य व प्रयोजन की एकरूपता के कारण इन सभी विषयों में आपसी घनिष्ठ संबंध दिखाई देता है।

इसलिए माध्यमिक स्तर पर विभिन्न विषयों को आवश्यकतानुसार एक दूसरे के साथ समन्वित करके पढ़ाने का प्रयास किया जाता है। इसके साथ आधुनिक शिक्षा के दौर में समवाय आधारित शिक्षण का महत्त्व भी बढ़ता जा रहा है। इसलिए कहा जा सकता है कि सामाजिक विज्ञान विषय को भी अन्य विषयों के साथ सहसंबंधित करके पढ़ाना श्रेयष्कर होगा, क्योंकि सभी विषय किसी न किसी रूप में मानवीय जीवन के साथ संबंधित होते हैं तथा सामाजिक विज्ञान शिक्षण का भी मुख्य उद्देश्य बालकों में मानवीय संबंधों की समझ उत्पन्न करना है। सामाजिक विज्ञान विषय अपने उद्देश्यों तथा प्रकृति को लेकर स्कूली पाठ्यक्रम के अन्य विषयों के साथ किसी न किसी रूप अथवा अर्थ में जुड़ा हुआ प्रतीत होता है। सामाजिक विज्ञान विषय का अन्य विषयों के साथ सहसंबंध का स्वरूप कैसा है, इसका अध्ययन इस अध्याय में निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत किया जाएगा–

- **सामाजिक विज्ञान में सहसंबंध की अवधारणा**
- **सामाजिक विज्ञान का अन्य विषयों के साथ संबंध**
- **सामाजिक विज्ञान का अपने विभिन्न उपविषयों के साथ सहसंबंध**

सामाजिक विज्ञान में सहसंबंध की अवधारणा व अन्य विषयों के साथ संबंध
(Concept of Correlation in Social Science and Relationship with other Subjects)

❑ **सामाजिक विज्ञान से सहसंबंध की अवधारणा तथा अन्य विषयों के साथ इसके संबंधों की व्याख्या कीजिए।**
(Define the concept of Correlation in social science and its relationship with other subjects.)

उत्तर : सामाजिक विज्ञान विषय का संबंध स्कूली स्तर पर पढ़ाए जाने वाले प्रत्येक विषय तथा कार्य क्षेत्र के वास्तविक रूप में सामाजिक विज्ञान का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य सामाजिक परिप्रेक्ष्य में मानव का अध्ययन करना है और सभी विषय किसी न किसी रूप में मानवीय जीवन के साथ संबंधित हैं। अतः इन सभी विषयों के साथ सामाजिक विज्ञान का महत्त्वपूर्ण संबंध है। स्कूल स्तर पर विद्यार्थियों को विज्ञान, गणित, भौतिक विज्ञान, रसायन-विज्ञान, वनस्पति-विज्ञान, जीव-विज्ञान, कला तथा विभिन्न भाषाओं को पढ़ाया जाता है। इन सबका 'सामाजिक विज्ञान' विषय के साथ घनिष्ठ संबंध है।

सामाजिक विज्ञान में सहसंबंध की अवधारणा (Concept of Correlation in Social Science)

सामाजिक विज्ञान समाज के लिए और समाज द्वारा किए जाने वाला अध्ययन है। अतः यह आवश्यक है कि इसमें उन सभी विषयों से सामग्री ग्रहण की जाए जिनका संबंध मानव संस्थाओं, मानव संबंधों और मानव व्यवहार के अध्ययन से है। वास्तव में यह ऐतिहासिक, सामाजिक, भौगोलिक तथा अन्य प्रकार के संबंधों का अध्ययन है। सामाजिक विज्ञान मानवीय संबंधों से जुड़ा हुआ विषय है। इन सभी विषयों में से क्रियात्मक सामग्री को छांटकर एक ही क्षेत्र में एकत्रित कर दिया जाता है, जिसे हम सामाजिक विज्ञान का नाम देते हैं। सभी सामाजिक विज्ञानों से क्रियात्मक सामग्री इसलिए छांटनी पड़ती है, क्योंकि सामाजिक विज्ञान की विषय-वस्तु का संबंध मानव तथा उसके वातावरण से है। इसलिए यह विभिन्न विषयों का समूह है। जेम्स हैमिंग ने सामाजिक विज्ञान में सहसंबंध की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए कहा है कि, **"वास्तव में यह ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामाजिक तथा अन्य संबंधों का अध्ययन है और नवयुवक को ऐसा परिचय तथा ज्ञान प्रदान करता है, जिसके बिना वह न तो अध्ययन के महत्त्व को जान सकता है और न ही उसके व्यक्तित्व तथा रुचियों का विकास हो पाता है।"** सामाजिक विज्ञान का पाठ्यक्रम एक विस्तृत रूपरेखा के रूप में ऐसा ज्ञान, अनुभव तथा अंतर्दृष्टि प्रदान करता है, जिसके चारों ओर सभी विषयों को समन्वित किया जा सकता है। यह बालकों को वह ज्ञान और जीवन के प्रति पूर्वीय स्थिति (Orientation) प्रदान करता है, जिसके अभाव में वह इसके अध्ययन के महत्त्व से अनभिज्ञ रह जाता है। अमेरिका के शिक्षा ब्यूरो ने भी सामाजिक विज्ञान में सहसंबंध की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए कहा है कि **"यह एक ऐसा अध्ययन है, जिसकी विषय-वस्तु का संबंध मानव समाज तथा मानव का सामाजिक समूह के सदस्य के रूप में संगठन और विकास है।"** **("Social Science has been defined as a study whose subject matter relates directly to the organisation and development of human society and to man as a member of social group.")**

सामाजिक विज्ञान सामाजिक विषयों का समूह नहीं है, अपितु इन सब विषयों को इस प्रकार संगठित तथा परिवर्तित कर दिया जाता है कि यह बिल्कुल एक नया विषय बन जाता है, जो बच्चे के वर्तमान तथा भूतकाल के सम्पूर्ण वातावरण की विवेचना करता है। इस संबंध में शैक्षिक अनुसंधान विश्वकोष (Encyclopaedia of Education Reasearch) में लिखा है, **"किसी के लिए यह निश्चय करना उचित नहीं है कि सामाजिक विज्ञान, इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र तथा नागरिक शास्त्र का गणितीय योग मात्र है। निश्चय ही यह इन विषयों से पर्याप्त सामग्री ग्रहण करता है, परंतु इसमें भूतकाल की उन घटनाओं, भौतिक पर्यावरण की उन विशेषताओं तथा सामाजिक संगठनों में उन्हीं विचारों को शामिल किया जाता है, जो मानव के वर्तमान तथा दैनिक जीवन से अपना संबंध रखते हैं।"**

उपरोक्त वक्तव्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि सामाजिक विज्ञान इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र और अर्थशास्त्र जैसे विषयों का मात्र समूह या संगठन नहीं है, अपितु इन विषयों से संबंधित सामग्री का ऐसा समन्वित और एकीकृत रूप है, जिसके द्वारा विद्यार्थियों को अपने समाज तथा मानव संबंधों को समझने, समाज में अपने आपको अच्छी तरह व्यवस्थित होने तथा समाज और सम्पूर्ण मानव जाति को विकास के मार्ग पर चलने में सहायता करता है। सामाजिक विज्ञान विषय में पठन-पाठन के लिए जो सामग्री चुनी जाती है,

वह किसी एक विषय विशेष अर्थात् इतिहास, अर्थशास्त्र, नागरिकशास्त्र या भूगोल आदि तक सीमित नहीं रहती है, अपितु अपने एकीकृत तथा समन्वित रूप में प्रस्तुत की जाती है। इससे बालकों को अपने समाज को जानने, आसपास की भौगोलिक अवस्थाएं समझने में पूरी-पूरी सहायता मिलती है।

सामाजिक विज्ञान का अन्य विषयों के साथ संबंध (Relationship of Social Science with other Subjects)

सामाजिक विज्ञान कुछ सामाजिक विज्ञान विषयों का समूह मात्र नहीं है, अपितु इसका प्राकृतिक विज्ञान, मनोविज्ञान, भाषा, कला व गणित जैसे वैज्ञानिक विषयों के साथ भी गहरा संबंध है। इन महत्त्वपूर्ण विषयों व सामाजिक विज्ञान के बीच संबंध को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

1. **प्राकृतिक विज्ञान व सामाजिक विज्ञान (Natural Science and Social Science) :** आधुनिक समय में प्राकृतिक विज्ञान की उपलब्धियां बहु-आयामी हैं। प्राकृतिक या भौतिक विज्ञान जैसे-जैसे कदम आगे बढ़ाता गया, वैसे-वैसे मनुष्य जाति के इतिहास को भी प्रभावित करता चला गया। प्राकृतिक विज्ञान की उपलब्धियों ने मनुष्य की सोच व व्यवहार में काफी परिवर्तन किया। वस्त्र, आभूषण व अन्य विलासिता का भौतिक सामान विज्ञान की महत्त्वपूर्ण देन है। आज हम इस विज्ञान के कारण ही एक छोटे से गांव या नगर के स्थान पर अपने संबंधों को विश्व के दूसरे कोने के साथ जोड़कर समाज व संस्कृति और राजनीतिक स्थितियों व व्यवहार का आकलन करते हैं। प्राकृतिक या भौतिक विज्ञान ने जहां मनुष्य को इतना कुछ दिया है, वहीं दूसरी ओर उसने भयानक आशंकाएं भी पैदा कर दी हैं।

इस प्रकार विज्ञान की अपनी सृजनात्मक और विध्वंसात्मक प्रकृति अपने शाश्वत रूप में आज भी विद्यमान है। स्वाभाविक रूप से समझा जा सकता है कि सामाजिक विज्ञान की करवटें और ज्ञान की गति एक-दूसरे के प्रति सापेक्ष रूप से संबंधित है। ज्ञान चाहे किसी प्रकार का हो, चाहे उसके कितने ही आयाम हों, मानव इतिहास से उसका प्रगतिगामी संबंध है। मानवीय प्रकृति की यह स्वाभाविक चेष्टा है कि मनुष्य अपने-आपको ज्यादा सुरक्षित व शक्तिशाली बनाने का निरंतर प्रयास करता है। इस कारण से मनुष्य को सदा ही सुरक्षात्मक शक्ति की आवश्यकता रही है।

सामाजिक संगठनात्मक प्रक्रिया द्वारा मनुष्य ने जिस शक्ति केन्द्र का निर्माण किया उसका नाम संस्कृति था। उसकी रक्षा करने के लिए राज्य नामक संस्था व्यवस्थित रूप से जन्मीं। प्राकृतिक विज्ञान या भौतिक विज्ञान मनुष्य की शक्ति का मुख्य स्रोत रहा है। उसी की क्रिया-प्रतिक्रियाओं ने सामाजिक विज्ञान को रूपित किया है। आधुनिक युग में जब सामाजिक विज्ञान शास्त्रियों ने मानव-व्यवहार संबंधी जो निष्कर्ष निकाले हैं, वे प्राकृतिक विज्ञान की सहायता के बिना नहीं निकाले जा सकते थे। इसलिए यह कहने में कोई अतिश्योक्ति नहीं है कि प्राकृतिक विज्ञान और सामाजिक विज्ञान एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

2. **गणित व सामाजिक विज्ञान (Mathematics and Social Science) :** वैज्ञानिक विषयों की शिक्षा देने का महत्त्व आज के युग में लगातार बढ़ रहा है। माध्यमिक स्तर की शिक्षा में गणित शिक्षा का विशेष महत्त्व है। आज जीवन का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है, जहां गणित की आवश्यकता न हो। इसलिए कोई भी समाज गणित के महत्त्व को झुठला नहीं सकता। बालक की सामाजिक उपयोगिता को ध्यान में रखकर ही गणित शिक्षण दिया जाता है। जीवन की विभिन्न स्थितियों के साथ गणित को संबंधित करके पढ़ाने से विद्यार्थियों को समाज का उपयोगी सदस्य बनाने में मदद मिलती है। डाकखाने में बचत खाता, बैंकिंग व घरेलू बजट आदि बनाने में गणित सहायता करता है।

अतः सामाजिक अध्ययन का गणित से भी महत्त्वपूर्ण संबंध है। गणित की प्रारंभिक जानकारी आगे राज्य तथा देश की न्यायपालिका, विधानपालिका, कार्यपालिका व बजट प्रक्रिया आदि को समझने में सहायक सिद्ध होती है, जिससे विभिन्न समस्याओं को समझने में सहायता मिलती है। सामाजिक विज्ञान में प्रयुक्त होने वाली सारणियाँ तथा ग्राफ की भाषा अन्य कोई नहीं अपितु गणित की भाषा ही है। किसी स्थान विशेष की औसत वर्षा व तापमान आदि की सही गणना में भी गणित हमारी काफी सहायता करता है। उत्पादन, वस्तुओं

की खरीद व बिक्री को गणित की सहायता से सूचीबद्ध व नियमित किया जा सकता है। अतः गणित और सामाजिक विज्ञान का घनिष्ठ संबंध है।

3. **मनोविज्ञान व सामाजिक विज्ञान (Psychology and Social Science)** : सामाजिक विज्ञान के अध्ययन का मुख्य उद्देश्य मानव के व्यवहारगत परिवर्तनों का अध्ययन करना है। इसलिए मनोविज्ञान और सामाजिक विज्ञान के आपसी संबंधों को नकारा नहीं जा सकता है। समाज में होने वाले सभी परिवर्तन मानव के व्यवहार से संबंधित होते हैं। मनोविज्ञान विषय हमें मानव के व्यवहार, इच्छा व स्वभाव को समझने में हमारी काफी सहायता करता है। सामाजिक समरसता और पारस्परिक व्यवहार को समझने में मनोविज्ञान विषय की काफी उपयोगिता है। इसके माध्यम से यह स्पष्ट रूप से जाना जा सकता है कि आज के जटिल समाज का स्वरूप व संरचना का आधार क्या है? इस विषय के अध्ययन के माध्यम से बालकों में निर्माणात्मक प्रवृत्तियों का विकास किया जा सकता है, क्योंकि हम मनोविज्ञान विषय की सहायता से उनकी मनोवृत्ति का सही आकलन कर सकते हैं। मनोविज्ञान तथा सामाजिक विज्ञान दोनों मानव विकास के लक्ष्य पर केन्द्रित हैं। मनोविज्ञान सामाजिक विज्ञान के शिक्षण को सरलता, सरसता तथा सुन्दरता प्रदान करता है। इससे सामाजिक विज्ञान को क्रियात्मक आधार प्राप्त होता है।

निकलसन व राईट ने लिखा है कि, **"सामाजिक विज्ञान बहुत विस्तृत विषय है और इसका अभिप्राय सारे संसार में मनुष्य का वर्तमान जीवन है।"** काफी हद तक उनका यह कथन सही लगता है, क्योंकि यह एक ऐसा विषय है, जो मानव को मानव के साथ संबंधित करता है। मनोविज्ञान सामाजिक विज्ञान को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मजबूत बनाता है। इसलिए हम कह सकते हैं कि मनोविज्ञान तथा सामाजिक विज्ञान में आपस में गहरा संबंध है।

4. **भाषा व सामाजिक विज्ञान (Language and Social Science)** : भाषा के द्वारा मनुष्य, विचारों को ग्रहण और अभिव्यक्त करता है। भाषा साहित्य का माध्यम है और साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब होता है। भाषा की पाठ्य-सामग्री, कहानियां, कविताएं आदि समाज के विभिन्न पहलुओं को प्रकट करती हैं। अध्यापक के लिए भाषा के बिना सामाजिक विज्ञान की शिक्षा देना असंभव है। भाषा वह माध्यम है, जिससे अध्यापक सामाजिक विज्ञान की शिक्षा देता है। भाषा के द्वारा ही बालक सामाजिक प्रश्नों का चिंतन करके उन पर अपने विचार प्रकट करते हैं तथा सामाजिक विज्ञान के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करते हैं। भाषा वह साधन है, जिससे अध्यापक प्रश्न पूछकर, बोलकर, समाज की रचना तथा उसके परिवर्तन प्रक्रिया से बालकों को अवगत करवाता है। भाषा विद्यार्थियों को सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों का भी ज्ञान प्रदान करती है। सामाजिक विज्ञान के शिक्षक अपनी विषय सामग्री उन लेखकों से भी लेते हैं, जिनकी साहित्यिक क्षेत्र में ख्याति है। अतः कहा जा सकता है कि भाषा और सामाजिक विज्ञान में गहरा संबंध है।

5. **कला तथा सामाजिक विज्ञान (Art and Social Science)** : सामाजिक विज्ञान शिक्षण का उद्देश्य बालकों में व्यक्तिगत व सामाजिक कुशलता की क्षमता उत्पन्न करना भी होता है। कला भी अपने स्वाभाविक रूप में इस उद्देश्य की पूर्ति करती है, कला शिक्षण बालकों को विभिन्नता तथा सौन्दर्यात्मक ज्ञान उपलब्ध करवाने में सहायता करता है। बालक को अच्छे मानव के रूप में विकसित करने में कला का विशेष योगदान होता है। महान चित्रकारों, संगीतकारों, नाट्यकारों व नक्काशीकारों के कार्यों की समझ कला से ही उत्पन्न होती है। यह स्वाभाविक तथ्य है कि कलाकारों का मानव तथा समाज से सीधा संबंध होता है। जापान के सामाजिक इतिहास का विशेष महत्त्व उनके नाटकों तथा उत्सवों को लेकर ही है।

सामाजिक विज्ञान को विषय-सामग्री में चित्र, ग्राफ, नक्शे, आकृतियां, भवन, उद्योग, बांध परियोजना, समय-चार्ट व मौसम चार्ट जैसी कलात्मक ईकाइयों का बहुत महत्त्व होता है। इन सबकी समझ हमें कला शिक्षण से ही प्राप्त होती है। कला के माध्यम से सामाजिक विज्ञान अध्यापक कला संबंधी अनेक कौशलों का विकास बालकों में कर सकता है। अतः कहा जा सकता है कि कला और सामाजिक विज्ञान में गहरा संबंध होता है।

निष्कर्ष (Conclusion) : उपरोक्त अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सामाजिक विज्ञान का प्राकृतिक विज्ञान, गणित, मनोविज्ञान, भाषा व कला जैसे वैज्ञानिक व साहित्यिक विषयों के साथ गहरा संबंध है। सामाजिक विज्ञान इन विषयों से संबंधित सामग्री का ऐसा समन्वित और एकीकृत रूप है, जिसके द्वारा बालकों को अपने समाज तथा मानव संबंधों को समझने, समाज में अपने आपको अच्छी तरह व्यवस्थित होने तथा समाज और सम्पूर्ण मानव जाति को विकास के मार्ग पर चलने का समुचित अवसर प्राप्त होता है।

सामाजिक विज्ञान का अपने विभिन्न उप-विषयों के साथ सहसंबंध
(Correlation of Social Science with its own Sub-subjects)

❑ **सामाजिक विज्ञान के अपने विभिन्न उप-विषयों के साथ सहसंबंध की विवेचना कीजिए।**
(Discuss the Correlation of Social Science with its own sub-subjects.)

उत्तर : सामाजिक विज्ञान एक ऐसा विषय है, जो मानव संबंधों की चर्चा करता है। वर्तमान युग की जटिलता व परिवर्तनशीलता ने विद्यालयों पर बालकों की दैनिक समस्याओं के समाधान में सहायता करने और भावी समस्याओं से निपटने हेतु उन्हें तैयार करने का विशेष उत्तरदायित्व डाल दिया है। इस उत्तरदायित्व को संभालने के लिए एक ऐसे विषय की आवश्यकता पड़ी, जो बालकों को उनकी परम्पराओं से अवगत करवाए और उन्हें सुरक्षित रखे और इसके साथ-साथ समकालीन अणु-युग में समाज के साथ समावेश की क्षमता रख सके।

इसलिए इतिहास, भूगोल, नागरिक-शास्त्र व अर्थशास्त्र की विषय-सामग्री का एकीकृत समावेश सामाजिक विज्ञान नामक विषय के अन्तर्गत किया गया। इसलिए कहा जाता है कि सामाजिक विज्ञान मात्र एक विषय नहीं अपितु इतिहास, भूगोल, नागरिकशास्त्र, समाजशास्त्र व भू-अर्थशास्त्र का समन्वित या एकीकृत रूप है। सामाजिक विज्ञान के इन सभी उप-विषयों का सामाजिक विज्ञान के साथ गहरा आपसी सहसंबंध है। सामाजिक विज्ञान तथा उसके उप-विषयों के आपसी सहसंबंध को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

1. **इतिहास व सामाजिक विज्ञान (History and Social Science) :** इतिहास बालकों को अपने अतीत व वातावरण को समझने में सहायता प्रदान करता है, इसलिए सामाजिक विज्ञान में इतिहास का अपना विशेष महत्त्व है। इतिहास द्वारा ही अतीत की घटनाओं को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में रखकर देखा जा सकता है। अतीत की आज के परिवेश में तुलना करके भविष्य के सुंदर निर्माण की योजना तैयार की जा सकती है। विद्यार्थियों में इतिहास को पढ़ने की रुचि को बढ़ावा देकर उनकी वांछित कुशलताओं एवं अभिवृत्तियों का विकास किया जा सकता है।

सामाजिक विज्ञान का भी मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों को आज के वातावरण में समहित करके अच्छा नागरिक बनाना है, जिसके द्वारा वे अतीत में अनेक शासनकालों में हुई गलतियों को सुधारकर सामाजिक कुशलता प्राप्त कर सकें। अतीत में सभ्यता से संबंधित वफादारी के उच्च आदर्शों और विशिष्ट अवधारणाओं की प्राप्ति के लिए इतिहास को पढ़ाना जरूरी है। इतिहास के माध्यम से सामाजिक विज्ञान की विषय-सामग्री को निष्पक्ष तथा प्रभावशाली खोज के लिए उपयोगी बनाया जा सकता है। इससे सामाजिक कार्यकलापों के बारे में रचनात्मक निर्णय लेने की क्षमता का विकास किया जाता है। बालकों में भारत की गुलामी और स्वतन्त्रता संग्राम से संबंधित उदाहरण देकर उनमें देशभक्ति, सहयोग और भाईचारे आदि की भावनाओं का विकास किया जा सकता है।

डॉ. दीक्षित एवं बघेला ने इतिहास और सामाजिक विज्ञान के आपसी सहसंबंध पर लिखा है, **"इतिहास शिक्षण का अपना एक विशिष्ट उद्देश्य भूतकाल के प्रकाश में वर्तमान को समझना है।"**

2. **भूगोल व सामाजिक विज्ञान (Geography and Social Science) :** सामाजिक विज्ञान एक विषय ही नहीं है, अपितु एक घर है, जिसमें सभी उप-विषय निवास करते हैं। सामाजिक विज्ञान में पढ़ाए जाने वाले विषय जैसे–भूगोल, नागरिक शास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास व समाजशास्त्र आदि एक-दूसरे से घनिष्ठ

संबंध रखते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि सामाजिक विज्ञान में भूगोल का भी विशेष महत्त्व है। आधुनिक भूगोल की विषय-वस्तु मानव के भौतिक एवं सांस्कृतिक वातावरण पर केंद्रित है। इसलिए भूगोल विषय की समझ के बिना सामाजिक विज्ञान विषय अपूर्ण है। भूगोल पृथ्वी की भौतिक विशेषताओं की व्याख्या करने के लिए मानव के प्राचीनतम अध्ययनों में से एक है। वर्तमान काल में भूगोल का संबंध एक तरफ सामाजिक विज्ञान और दूसरी तरफ भौतिक विज्ञान से है। भूगोल को पारस्परिक संबंध का विषय भी कहा जाता है। भूगोल का एक बड़ा भाग सामाजिक विज्ञान से संबंध रखता है। इसलिए भूगोल तथा सामाजिक विज्ञान एक-दूसरे के पूरक हैं।

प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञान से संबंध के कारण भूगोल विषय छात्रों को अपनी ओर आकर्षित करता है। घटना के कालक्रम का संबंध जहां इतिहास से होता है, वहीं उस घटना के क्षेत्र का संबंध भूगोल से होता है। भूगोल उन घटनाओं का प्रतिवेदन है, जो किसी क्षेत्र विशेष में घटित हुईं। आज सामाजिक विज्ञान की आधुनिक पाठ्य-वस्तु एकांकी नहीं है, अपितु समाज के बहुत-से क्षेत्रों की परिस्थितियां इससे जुड़ी हुई हैं तथा मानवीय क्रियाएं भौगोलिक तथ्यों द्वारा नियंत्रित होती हैं। भूगोल विषय सामाजिक विज्ञान से इसलिए जुड़ा हुआ है क्योंकि भूगोल ही समाज के ढांचे को तैयार करता है।

इसके अतिरिक्त प्राकृतिक वातावरण एवं सामाजिक व्यवस्थाएं भी एक-दूसरे के साथ जुड़ी होने के कारण सामाजिक विज्ञान के साथ भूगोल का आपसी सहसंबंध काफी गहरा हो जाता है। किसी राष्ट्र की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक पूंजी वहां की भौगोलिक दशाओं पर निर्भर करती है। भूगोल व सामाजिक विज्ञान में पृथ्वी के अध्ययन के साथ-साथ वहां पर रहने वाले लोगों के समाज का भी अध्ययन किया जाता है। इसलिए सामाजिक विज्ञान तथा भूगोल एक-दूसरे के पूरक हैं। दोनों विषय एक-दूसरे के गुणों से जुड़े हुए हैं।

3. **नागरिक शास्त्र और सामाजिक विज्ञान (Civics and Social Science) :** नागरिक शास्त्र का सामाजिक विज्ञान के साथ घनिष्ठ संबंध है। नागरिकशास्त्र नामक उप-विषय के तहत नेतृत्व, राजनैतिक चेतना, राजनीतिक समानता, राज सत्ता, प्रशासन प्रणाली व अन्य राजनीतिक परिस्थितियों का अध्ययन किया जाता है। समाज में रहने वाले सभ्य मानव नागरिक कहलाते हैं। सामाजिक विज्ञान का भी एक प्रमुख उद्देश्य बालक को भविष्य का योग्य नागरिक बनाना होता है। नागरिकों के व्यक्तित्व, आचार-विचार व मूल्यों को बताने वाले शास्त्र को ही नागरिक शास्त्र कहा जाता है।

नागरिक शास्त्र ही स्वस्थ व अच्छे व्यवहार का ज्ञान देकर व्यक्ति का समायोजित व्यक्तित्व तैयार करता है। नागरिक के व्यक्तित्व में भाईचारे, हित व सुरक्षा की भावना नागरिक शास्त्र ही उत्पन्न करता है। नागरिक शास्त्र शिक्षण का उद्देश्य आदर्श नागरिक तैयार करना है। आदर्श नागरिक संतुलित व्यक्तित्व का मालिक होता है। सामाजिक विज्ञान में छात्रों को स्वयं की भावनाओं की महत्त्वता को दर्शाते हुए अपने पड़ोस, नगर, घर आदि की भी भावनाओं की कद्र करने का अभ्यास करवाया जाता है अर्थात् सामाजिक विज्ञान छात्रों की स्वच्छता के महत्त्व पर बल देता है।

दार्शनिक अरस्तू के अनुसार, **"स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन निवास करता है।"** नागरिक शास्त्र द्वारा महत्त्वपूर्ण नागरिक समस्याओं के बारे में उचित ढंग से वाद-विवाद किया जाता है। इसका प्रमुख उद्देश्य आदर्श समाज की स्थापना एवं देश के भावी कर्णधार तैयार करना है। परिणामस्वरूप नागरिक शास्त्र सामाजिक विज्ञान का अभिन्न उप-विषय है। इसलिए हम कह सकते हैं कि अच्छे समाज के निर्माण में अच्छे नागरिकों की आवश्यकता होती है और ऐसा करने में सामाजिक विज्ञान अपने उप-विषय के साथ मिलकर महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

4. **अर्थशास्त्र और सामाजिक विज्ञानं (Economics and Social Science) :** सामाजिक विज्ञान एवं अर्थशास्त्र भी अंतर्संबंधित है। अर्थशास्त्र के अन्तर्गत मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है, जबकि सामाजिक विज्ञान अर्थ अर्थात् धन से संबंधित क्रियाओं का उल्लेख करता है। इन क्रियाओं

का संबंध धन के वितरण, उपयोग, उत्पादन, उपभोग, बचत व निवेश आदि संबंधित क्रियाओं से होता है। आज के युग में अर्थ की महत्त्वता काफी बढ़ गई है, क्योंकि समाज की भौतिक उन्नति का बुनियादी आधार धन ही है। मनुष्य द्वारा की गई सभी धन से संबंधित क्रियाएं अर्थशास्त्र विषय के अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत आती हैं। मानव की तीन बुनियादी जरूरतें हैं—रोटी, कपड़ा और मकान। इसलिए समाज की यह जिम्मेवारी है कि वह मनुष्य की इन बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति करे। आर्थिक आवश्यकता सभी सामाजिक क्रियाओं का मुख्य स्रोत है। समाज में भुखमरी उत्पन्न होने से पाप बढ़ते हैं, अशांति फैलती है तथा भूख से पीड़ित मानव कुछ भी करने के लिए विवश हो जाता है।

इसलिए सामाजिक विज्ञान के माध्यम से बालकों को विभिन्न आर्थिक क्रियाओं की समझ देना आवश्यक हो जाता है। व्यक्ति की आर्थिक आवश्यकता का सीधा संबंध उसके सामाजिक जीवन से होता है। अर्थशास्त्र और सामाजिक विज्ञान एक-दूसरे के पूरक हैं, क्योंकि एक नागरिक को आर्थिक क्रिया करने के लिए प्रेरित करता है, वहीं दूसरा उसमें प्राप्त आर्थिक संसाधनों के सही उपयोग की समझ पैदा करता है। इतिहास इस बात का गवाह है कि धन का अभाव व उसका असमान वितरण विभिन्न सामाजिक व राजनैतिक क्रांतियों का कारण रहा है। इसलिए इतिहास, भूगोल व नागरिक शास्त्र की तरह अर्थशास्त्र का भी सामाजिक विज्ञान के साथ गहरा संबंध है। इन सब उप-विषयों का एकीकृत अध्ययन (सामाजिक विज्ञान) ही बालक के सर्वांगीण विकास की रूपरेखा प्रस्तुत करता है।

5. समाजशास्त्र और सामाजिक विज्ञान (Sociology and Social Science) : समाज सामाजिक विज्ञान अध्ययन की आधारशिला है।

रेनियर के अनुसार, **"सामाजिक इतिहास, आर्थिक इतिहास की पृष्ठभूमि तथा राजनैतिक इतिहास की कसौटी है।"** समाजशास्त्र का विकास सामाजिक विकास के परिप्रेक्ष्य में हुआ है। वास्तव में समाजशास्त्र समाज या समाजों का अध्ययन होता है। यदि समाज ही नहीं होता तो सामाजिक विज्ञान की भूमिका का कोई औचित्य नहीं होता। मानवीय व्यवहार के सामान्य नियमों का अध्ययन समाजशास्त्र विषय के अन्तर्गत ही किया जाता है। सामाजिक नियमों के विकास से ही विभिन्न सामाजिक संगठनों का विकास हुआ है। सामाजिक परिवर्तनों व घटनाओं के कारण सामाजिक विज्ञान की विषय-वस्तु भी बदलती रहती है।

इस विषय में टॉयनबी का कहना है कि, **"सामाजिक तत्वों ने ही सामाजिक विज्ञान का निर्माण किया है।"** समाज की रचना बड़ी जटिल है। इसके प्रत्येक क्षेत्र को समझना काफी कठिन है। सामाजिक संस्थाओं, मूल्यों, रीति-रिवाजों व परम्पराओं को जाने बिना समाज की संरचना व संगठन को समझना सरल नहीं है। इनको समझने व विकसित करने में समाजशास्त्र विषय का शिक्षण हमारी सहायता करता है। इस विषय के अन्तर्गत मानवीय व्यवहारों का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। समाज को प्रगति की ओर ले जानी वाली संस्थाओं जैसे—परिवार, स्कूल, शिक्षा, चर्च, धर्म, राज्य, सरकार व श्रमिक को समझने में सामाजिक विज्ञान तथा समाज शास्त्र का मिला-जुला शिक्षण हमारी काफी सहायता करता है।

सामाजिक परिवर्तनों की मंद प्रक्रिया जो समाज में शांत प्रवाह में भीतर ही भीतर निरंतर चलती रहती है, सामाजिक संस्कृति को प्रभावित करती है व नए विचारों का सृजन करती है। पाठ्य विषय-सामग्री की दृष्टि से समाजशास्त्र व सामाजिक विज्ञान में कोई विशेष अंतर नहीं है। सामाजिक विज्ञान समाजशास्त्र की शिक्षण सामग्री को अन्य विषयों की सहयोगात्मक सामग्री को एकीकृत रूप में प्रस्तुत करता है।

निष्कर्ष (Conclusion) : सामाजिक विज्ञान शिक्षण में मानव जीवन के विभिन्न क्रियाकलापों को समझने के लिए इतिहास, नागरिक शास्त्र, भूगोल, अर्थशास्त्र व समाजशास्त्र जैसे उप-विषयों की पाठ्य-सामग्री का समावेश किया जाता है। इतिहास मनुष्य की कहानी, अर्थशास्त्र आर्थिक क्रियाओं, नागरिक शास्त्र सरकार की नीतियों और समाजशास्त्र मनुष्य द्वारा निर्मित संस्थाओं व संगठनों को समझने में हमारी सहायता करता है। इनका समन्वित व एकीकृत रूप ही सामाजिक विज्ञान के नाम से जाना जाता है। इसलिए कहा जा सकता है कि सामाजिक विज्ञान का अपने उप-विषयों के साथ गहरा आपसी सहसंबंध होता है।

शिक्षाशास्त्रीय विश्लेषण : अर्थ, महत्त्व, चरण व शीर्षक

6

(Pedagogical Analysis : Meaning, Importance, Steps and Topics)

परिचय
(Introduction)

उद्दीपन के माध्यम से वांछित व्यवहार परिवर्तन के लिए किए जाने वाले प्रयास को शिक्षण प्रक्रिया कहा जाता है। अध्यापक इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अनेकों प्रकार के प्रयास करता है। पैडागोजिकल (Pedagogical) शब्द का प्रयोग शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में आमतौर पर किया जाता है। शिक्षण में प्रयुक्त यह शब्द नया नहीं है, क्योंकि काफी समय से इसका प्रयोग पैडागोग (Pedagogue) व पैडागोगी (Pedagogy) के रूप में होता रहा है। आम चलन में इस शब्द का प्रयोग उस समय से माना जाता है, जब अध्यापक को पैडागोग के नाम से जाना जाता था। पहले विद्यालयों में अध्यापक के लिए आमतौर पर इस शब्द का प्रयोग किया जाता था। इसका प्रयोग पैडन्टिक अध्यापक (Pedantic Teacher) के रूप में भी होता आया है। पैडन्टिक शिक्षक से हमारा अभिप्राय उस शिक्षक से होता है, जो पुस्तक, तकनीकी, ज्ञान, नियमों को शिक्षण से संबंधित करता है। एक अच्छा पैडन्टिक शिक्षक हमेशा अपने शिक्षण को प्रभावी व उपयोगी बनाना चाहता है। इसके लिए वह सदैव शिक्षण के क्षेत्र में कुछ न कुछ नया करने का प्रयास करता है। आज शिक्षण के क्षेत्र में जिस पैडागोगी शब्द का प्रयोग होता है, उसका अर्थ है–'शिक्षण का विज्ञान'। विश्लेषण (Analysis) से अभिप्राय उस शिक्षण प्रक्रिया से है, जिसमें पाठ्य विषय-वस्तु को पहले भागों में बांटा जाता है तथा उसके उपरांत उनके एक-एक भाग का क्रमबद्ध रूप से अध्ययन करके किसी निष्कर्ष पर पहुंचने का प्रयास किया जाता है। इस अध्याय के अन्तर्गत हम **शिक्षा शास्त्रीय विश्लेषण** के अर्थ, महत्त्व, चरण और विभिन्न उप-शीर्षकों का इस अवधारणा के अन्तर्गत अध्ययन करेंगे। सामाजिक विज्ञान पाठ्यक्रम की कुछ इकाइयों से संबंधित विषय-वस्तु का शिक्षाशास्त्रीय विश्लेषण निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत किया जाएगा–

- भारतीय संविधान
- भारत का विस्तार, स्थिति व भौगोलिक विशेषताएं
- फ्रांसीसी क्रांति
- जनसंख्या
- समकालीन विश्व में लोकतंत्र
- आपदा प्रबंधन

शिक्षाशास्त्रीय विश्लेषण का अर्थ, महत्त्व, प्रयोग व चरण
(Meaning, Importance, Use and Step of Pedagogical Analysis)

❑ शिक्षाशास्त्रीय विश्लेषण से आप क्या समझते हैं? इसके महत्त्व, प्रयोग व चरणों की विवेचना कीजिए।
(What do you mean by Pedagogical Analysis? Discuss its importance, uses and steps.)

उत्तर : शिक्षाशास्त्रीय विश्लेषण नामक पद दो शब्दों से लेकर बना है—शिक्षाशास्त्र तथा विश्लेषण। साधारण भाषा में इस पद का अर्थ होता है, एक ऐसा विश्लेषण जो शिक्षाशास्त्र पर आधारित होता है। यह वह प्रक्रिया होती है, जिसके माध्यम से किसी विषय-वस्तु विशेष को उसके भागों, अवयवों तथा तत्त्वों में तोड़ा जाता है। उदाहरण के तौर पर हम एक घड़ी के पुर्जों को अलग-अलग कर सकते हैं। इसी तरह हम किसी भी शिक्षण प्रकरण या विषय-वस्तु को उसके विभिन्न भागों तथा अवयवों—उप-इकाइयों, प्रकरणों तथा अवधारणा विशेष में विभाजित करने का कार्य इकाई विश्लेषण (unit analysis) के माध्यम से ही करते हैं।

इस विश्लेषण प्रक्रिया का उपयोग किसी विषय खास के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम की विषय-वस्तु या प्रकरण को उसके विस्तृत एवं छोटे खंडों, उपखंडों, इकाई तथा उप-इकाइयों, वृहत और छोटी अवधारणाओं, खण्ड तथा उपखण्डों इत्यादि में विभाजित करने के लिए किया जाता है। यही सब बातें सामाजिक अध्ययन विषय पर भी लागू होती हैं।

सामाजिक विज्ञान के विषय में किसी प्रकरण या खंड का शिक्षण विज्ञान या शिक्षाशास्त्रीय नियमों को आधार बनाकर किया जाने वाला विश्लेषण कार्य की सामाजिक विज्ञान की विषय-वस्तु, प्रकरण या खंड को इस प्रकार का विश्लेषण शिक्षाशास्त्रीय विश्लेषण कहलाता है।

अर्थ
(Meaning)

विज्ञान आज हमारे जीवन के सभी पहलुओं को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित कर रहा है। हम अपने दिन-प्रतिदिन के जीवन में, अपने कार्यों को सही तरीके से करने के लिए तथा अपने आराम तथा विकास के लिए विज्ञान की सेवाएं लेते हैं। इससे हमारी शक्ति और समय की काफी बचत होती है। कम समय व लागत में कम से कम समय में ज्यादा से ज्यादा और बढ़िया से बढ़िया परिणामों की प्राप्ति करना सिर्फ विज्ञान के द्वारा ही संभव है। विज्ञान की यह प्रकृति है कि वह अपने प्रयोग से कम से कम साधनों को खर्च करके (Minimum Input) ज्यादा से ज्यादा अच्छे परिणामों को प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए अधिगम शिक्षण के विज्ञान में ऐसी क्षमता और शक्ति होनी चाहिए कि उसका उपयोग एक अध्यापक अपने शिक्षण में ज्यादा से ज्यादा कर सके। शिक्षण के विज्ञान या शिक्षाशास्त्र के प्रयोग से यह उम्मीद की जाती है कि शिक्षण कार्य में सीमित साधनों के साथ हमें बढ़िया से बढ़िया शिक्षण परिणामों को प्राप्त करने में पूरी-पूरी सहायता मिल सके। सारांश रूप में हम यह कह सकते हैं कि शिक्षण के शिक्षाशास्त्रीय विश्लेषण से हमारा अर्थ अध्यापक के द्वारा प्रयोग उन सभी शिक्षा विधियों तथा प्रविधियों से है, जिनके माध्यम से अध्यापक अपने शिक्षण कार्य को ज्यादा सरलता और प्रभावी तरीके से पूर्ण करने में सक्षम हो पाता है।

महत्त्व
(Importance)

यदि हम शिक्षाशास्त्रीय विश्लेषण की प्रकृति या स्वरूप पर एक नजर डालें तो इसके महत्त्व को निम्न कार से समझा जा सकता है—

(i) शिक्षक इसकी सहायता से शिक्षण को अच्छी तरह से संपादित कर सकता है।

(ii) अपेक्षित व्यवहार बदलावों या शिक्षण परिणामों के रूप में ज्यादा से ज्यादा अच्छे परिणामों की उपलब्धि को प्राप्त किया जा सकता है।

(iii) अधिगम उद्देश्यों की पूर्ति में इसको सहायक बनाया जा सकता है।

(iv) पाठ्यक्रम की विषय-वस्तु को प्रभावी ढंग से प्रकरणों तथा खण्डों में विभाजित किया जा सकता है।

(v) शिक्षण-अधिगम की प्रक्रिया को सरल तथा प्रभावी बनाने में शिक्षाशास्त्रीय विश्लेषण हमारी काफी सहायता करता है।

(vi) शिक्षण-अधिगम उद्देश्यों की पूर्ति में उसकी सरलता उपलब्ध विषय-वस्तु या प्रकरण तथा शिक्षण

अधिगम अनुभवों की बेहतर विधियों, प्रविधियों, तकनीकों, व्यूह-रचनाओं तथा सहायक सामग्री के द्वारा प्रस्तुत करने पर आधारित होती है, इसमें भी शिक्षाशास्त्रीय विश्लेषण अध्यापक का मार्ग-दर्शन करता है।

(viii) कोई भी अधिगम पूर्ण रूप से तभी सफल होता है जब समय-समय पर इसका मूल्यांकन होता रहे। यह विश्लेषण अध्यापक की इसमें भी सहायता करता है।

(viii) मूल्यांकन प्रणाली से वांछित उद्देश्यों को किस हद तक प्राप्त किया गया, यह भी शिक्षाशास्त्रीय विश्लेषण से ही पता चलता है। इसलिए अध्यापक का पूर्ण शिक्षण कार्य इसी पर केन्द्रित होता है।

(ix) शिक्षण विधियों, तकनीकों और शिक्षण साधनों में उपयुक्त तालमेल की अत्यन्त आवश्यकता होती है। इसी से वांछित व निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त किया जाता है। इसमें भी यह विश्लेषण अध्यापक को प्रोत्साहन प्रदान करता है।

(x) शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को उसका सर्वोत्तम रूप प्रदान करने में इस विश्लेषण का विशेष महत्त्व होता है।

प्रयोग
(Uses)

सामाजिक विज्ञान के एक शिक्षक को अपने विषय-वस्तु का शिक्षाशास्त्रीय विश्लेषण करने के लिए निम्न प्रकार से प्रयास करने चाहिए–

(i) सामाजिक विज्ञान विषय की विषय वस्तु को अच्छी तरह वृहत् (Major) और लघु (Minor) प्रकरणों, खण्डों, इकाइयों संप्रत्ययों, विभागों आदि में विभाजित करना।

(ii) समय-सारणी में निर्धारित घण्टी में अच्छी तरह प्रदान की जा सकने वाली विषय सामग्री को ही पाठ, खण्ड इकाई के रूप में पढ़ाना।

(iii) कक्षा-कक्ष में जिस प्रकरण का अध्ययन करवाया जाना है उसको आगे फिर वृहत तथा लघु संप्रत्ययों या एकल संप्रत्ययों (Single Concepts) में विभाजित करना।

(iv) उपरोक्त चरणों को अपनाने के बाद प्रकरण या खण्ड के शिक्षण या अनुदेशन उद्देश्यों का निर्माण किया जाता है और उन्हें निश्चित व्यवहारजन्य शब्दावली में तैयार करना।

(v) इस बात पर विचार करना चाहिए कि निर्धारित प्रकरण या खण्ड के अधिगम द्वारा निर्धारित अनुदेशनात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है। निश्चित रूप से इस कार्य के लिए उपलब्ध मानवीय एवं भौतिक संसाधनों का सर्वश्रेष्ठ प्रयोग और सही प्रविधियों एवं विधियों का चयन किया जाना चाहिए।

(vi) शिक्षाशास्त्रीय विश्लेषण उपयुक्त मूल्यांकन प्रणाली के नियोजन तथा कार्यान्वयन पर अधिक जोर देता है। सामाजिक अध्ययन विषय के शिक्षक को पढ़ाए जाने वाले प्रकरण की विषय-वस्तु के अनुदेशनात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति में मूल्यांकन प्रविधियों तथा तकनीकों का भी अपने शिक्षाशास्त्रीय विश्लेषण में अच्छी तरह प्रयोग करना भी जरूरी है।

स्तर
(Step)

सामाजिक विज्ञान विषय के अध्यापक द्वारा शिक्षाशास्त्रीय विश्लेषण प्रक्रिया को संपादित करने के लिए निम्नलिखित सोपानों को अपनाया जाना चाहिए, जो इस प्रकार हैं–

(i) विषय-वस्तु की किसी प्रकरण, इकाई, एकल संप्रत्यय का अलग-अलग शिक्षाशास्त्रीय विश्लेषण करना।

(ii) कक्षा-कक्ष में प्रस्तुत इकाई या प्रकरण की विषय-वस्तु के शिक्षण अधिगम के लिए सही अनुदेशनात्मक उद्देश्यों का निर्माण एवं उनको व्यवहारजन्य शब्दावली में तैयार करना।

(iii) कक्षा-कक्ष में प्रस्तुत प्रकरण या खण्ड की शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के सही मूल्यांकन के लिए उचित विधियों, प्रविधियों तथा तकनीकों का चुनाव करना।

(iv) पाठ्यक्रम की सफलता के लिए निर्धारित अनुदेशनात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति के संबंध में शिक्षण विधियों, तकनीक प्रविधियों, व्यूह-रचनाएं, शिक्षण-अधिगम क्रियाओं, शिक्षण सहायक सामग्री इत्यादि का चुनाव करना।

निष्कर्ष (Conclusion) : उपरोक्त अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि शिक्षाशास्त्रीय विश्लेषण इकाई या विषय सामग्री को पढ़ाने की एक वैज्ञानिक व क्रमबद्ध व्यावहारिक शब्दावली है। यह अध्यापक शिक्षण से पहले व्यावहारिक शब्दावली में तैयार करता है तथा कक्षा-कक्ष में इसे क्रियात्मक रूप प्रदान करता है। अधिगम शिक्षण के लिए निर्धारित उद्देश्यों की सफलता में शिक्षाशास्त्रीय विश्लेषण की विशेष भूमिका होती है। उपरोक्त तथ्यों को आधार बनाकर इसकी सफलता को सुनिश्चित किया जा सकता है।

भारतीय संविधान
(Indian Constitution)

❑ **'भारतीय संविधान की मुख्य विशेषताएं तथा मौलिक कर्तव्य' उप-विषय पर शिक्षा शास्त्रीय विश्लेषण तैयार कीजिए।**
(Give pedagogical analysis of salient features of Indian Constitution and Fundamental Duties.)

अथवा

❑ **भारतीय संविधान की मुख्य विशेषताओं की व्याख्या कीजिए। इस प्रकरण पर शिक्षा शास्त्रीय विश्लेषण तैयार कीजिए।**
(Explain the salient features of Indian Constitution. Prepare a pedagogical analysis on this topic.)

उत्तर : संविधान नियमों, विनियमों, विधियों का समूह होता है, जिसके आधार पर सरकार के निर्माण की प्रक्रिया सम्पन्न होती है और वह जनता पर शासन करने का आधार प्राप्त करती है। भारतीय संविधान जनता-सरकार संबंध तथा सरकार के विभिन्न अंगों में शक्तियों के विभाजन को स्पष्ट करता है। 26 जनवरी, 1950 को भारतीय संविधान लागू किया गया था। भारतीय संविधान से संबंधित विविध पहलुओं को निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत समझा जा सकता है–

प्रस्तावना (Preamble) : भारतीय संविधान में एक प्रस्तावना अंकित की गई थी, जिसमें भारतीय संविधान के उच्च आदर्श अंकित हैं। 1976 ई. तक इस प्रस्तावना में कोई परिवर्तन नहीं किया गया। नवम्बर, 1976 में भारतीय संसद के 42वां संवैधानिक संशोधन (Constitutional Amendment) पारित किया, जिसके द्वारा इस प्रस्तावना में कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए गए थे। प्रस्तावना के मौलिक रूप में समाजवादी, धर्म-निरपेक्ष तथा राष्ट्र की अखण्डता के शब्द नहीं थे। ये शब्द संविधान के 42वें संशोधन द्वारा प्रस्तावना में अंकित किए गए हैं। भारतीय संविधान की मूल प्रस्तावना का प्रारूप जवाहरलाल नेहरू द्वारा तैयार किया था जो अमेरिकी प्रस्तावना पर आधारित है। प्रस्तावना के मुख्य तत्त्व हैं–शासन की अंतिम सत्ता का जनता में निहित होना, प्रभुत्त्व सम्पन्न राज्य, गणराज्य, लोकतन्त्र, धर्म-निरपेक्षता, स्वतंत्रता, समानता, राष्ट्रीय एकता, बंधुत्व व व्यक्ति की गरिमा। शासन प्रणाली को स्पष्ट करने, शासन के सिद्धांतों को प्रकट करने, राजनैतिक एवं नैतिक दृष्टि से शासनकर्ताओं के दायित्वों का बोध कराने, जटिल परिस्थितियों में संविधान के ध्येयों को इंगित करने, आदि में प्रस्तावना का काफी महत्त्व है। संविधान सभा के सदस्य **पण्डित ठाकुर दासभार्गव** के अनुसार, **"प्रस्तावना संविधान का अभिन्न अंग है। यह संविधान की आत्मा है। यह संविधान की कुंजी है... .. यह संविधान का एक रत्न है। यह एक अतिसुन्दर वार्तिक वाक्य है। यह स्वयं में ही एक आदर्श है।"**

प्रस्तावना का लक्ष्य (Aim of Preamble) : इसका लक्ष्य एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था स्थापित करना है, जहां जनता संप्रभु हो, शासन निर्वाचित हो और जनता के प्रति उत्तरदायी हो, शासन की सत्ता जनता के मौलिक अधिकारों की रक्षक तथा जनता को अपने विकास का समुचित अवसर प्राप्त हो।

भारतीय संविधान के स्रोत (Sources of Indian Constitution) : भारत के संविधान को विश्व के महत्त्वपूर्ण संविधानों के गहन अध्ययन का परिणाम कहा जा सकता है। इसके निर्माण में निम्न स्रोतों का सहारा लिया गया है–

(i) भारतीय संविधान का सबसे महत्त्वपूर्ण स्रोत 'भारत सरकार अधिनियम-1935' है।
(ii) संविधान की संसदीय प्रणाली तथा वैधानिक प्रक्रिया इंग्लैण्ड के संविधान से ली गई है।
(iii) संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकार और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा संविधान की व्याख्या अमेरिका के संविधान से प्रेरित है।
(iv) 'कर्तव्यों' में रूसी संविधान की छाप दिखाई देती है।
(v) शक्तिशाली केन्द्र के लिए संघ अथवा यूनियन तथा अविशिष्ट शक्तियों को केन्द्र में सौंपने पर कनाड़ा के संविधान का प्रभाव है।
(vi) विषयों की सूची-केन्द्रीय, राज्य व समवर्ती सूची तथा केन्द्र व राज्य के झगड़ों को मिटाने का विधान आस्ट्रेलिया से लिया गया है।
(vii) आपातकालीन स्थितियों से संबंधित प्रावधान जर्मन संविधान से लिया गया है।
(viii) राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांत आयरलैण्ड के संविधान से लिये गए हैं।
(ix) सर्वोच्च न्यायालय द्वारा समय-समय पर दिए गए निर्णय भी संविधान का स्रोत माने गए हैं।
(x) संसद द्वारा समय-समय पर पारित संशोधन भी संविधान का स्रोत है।

भारतीय संविधान की मुख्य विशेषताएं
(Salient Features of Indian Constitution)

2 वर्ष, 11 महीने, 18 दिन तक कार्य करते हुए 26 नवम्बर, 1949 को भारत के लिए संविधान निर्माण का महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हुआ। यह संविधान 26 जनवरी, 1950 को सम्पूर्ण भारतवर्ष पर लागू कर दिया गया। भारत के संविधान से संबंधित मुख्य विशेषताओं को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

1. संघीय संरचना (Federal Structure) : भारत में हमारी संघीय सरकार है। संघ में सरकार के दो स्तर होते हैं–राज्य सरकार तथा केन्द्रीय सरकार। संघ में राज्य सरकार केन्द्रीय सरकार की मात्र अभिकर्ता नहीं होती। दोनों के कार्यक्षेत्र निर्धारित होते हैं। न तो केन्द्रीय सरकार तथा न ही राज्य सरकार एक-दूसरे से संबंधित क्षेत्र में हस्तक्षेप कर सकती है। इस तरह से लिखित संविधान में दोनों सरकारों के कार्यों का वर्णन किया गया है, जो एक संघात्मक शासन के लिए जरूरी है। भारत का संविधान 'संघीय राज्य' शब्द का प्रयोग नहीं करता। इसके अनुसार भारत 'राज्यों का संघ' है।

2. लिखित तथा निर्मित (Written and Prepared) : भारतीय संविधान का अधिकतर भाग लिखित तथा सूचीबद्ध है। हकीकत में संघात्मक शासन के लिए लिखित संविधान होना अनिवार्य है। भारतीय संविधान को निर्मित संविधान इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह ब्रिटेन के संविधान की भांति क्रमशः विकसित नहीं है, बल्कि भारतीयों ने इसे एक निश्चित अवधि में निर्मित किया है।

3. सबसे विस्तृत (Most Extensive) : भारत का संविधान विश्व के सभी देशों के संविधानों से विस्तृत है। इसमें 465 अनुच्छेद, 25 भाग और 12 अनुसूचियाँ हैं।

4. धर्मनिरपेक्ष राज्य (Secular State) : भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है। भारत के संविधान के अनुसार सरकार को भी धर्मनिरपेक्ष रहना पड़ता है। इसका अभिप्राय यह है कि सरकार के द्वारा ऐसी नीतियों का निर्माण नहीं किया जाना चाहिए जो भारत में रहने वाले विभिन्न धर्मों के व्यक्तियों में भेदभाव करे। किसी भी धर्म में आस्था रखने के बावजूद भी सभी नागरिक कानून के समक्ष समान समझे जाते हैं।

5. संसदीय शासन की व्यवस्था (Provision for Parliamentary Rule) : भारत में संसदीय सरकार है। संविधान द्वारा देश में संसदीय शासन को स्थापित किया गया है। संसद को सर्वोच्च अधिकार दिए गए हैं। वास्तविक सत्ता मंत्रिमंडल में निहित होती है तथा मंत्रिमंडल के प्रति उत्तरदायी होती है।

6. स्वतंत्र निर्णय (Free Decision) : संविधान द्वारा भारत की न्यायपालिका को स्वतंत्र बनाने का प्रावधान किया गया है। सर्वोच्च तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति के द्वारा की जाती है। न्यायाधीशों का कार्यकाल तथा वेतन आदि निश्चित होता है। न्यायालय किसी भी शासक के द्वारा प्रभावित नहीं होता है। केन्द्र तथा राज्य सरकारों के मध्य झगड़े अथवा विवाद होने पर न्यायालय निष्पक्ष रूप से निर्णय देता है। संघात्मक प्रणाली में इसकी अति आवश्यकता है।

7. सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार (Universal Adult Franchise) : संविधान ने सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार प्रणाली विकसित की है। इस प्रणाली के अन्तर्गत प्रत्येक भारतीय नागरिक जिसकी उम्र 18 वर्ष अथवा उससे ज्यादा है, उसे धर्म, जाति, वर्ण, लिंग आदि के भेदभाव के बगैर चुनाव में मतदान करने का अधिकार दिया गया है। वह केन्द्रीय, राज्य तथा स्थानीय सभी स्तरों पर सरकार का चयन कर सकता है।

8. एक कल्याणकारी राज्य (A Welfare State) : एक कल्याणकारी राज्य वह होता है, जो लोगों की भलाई के लिए अनेक कार्य करता है। संविधान का एक भाग नागरिकों के मौलिक अधिकारों तथा मौलिक कर्तव्यों से संबंधित है। प्रत्येक नागरिक को अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए छह मौलिक अधिकार दिये गये हैं। इन अधिकारों के अलावा संविधान ने मौलिक कर्तव्यों की एक सूची भी प्रदान की है, जिससे प्रत्येक भारतीय से अपनी क्षमतानुसार पूर्ण करने की उम्मीद की जाती है। ये वे निर्देश हैं, जो संविधान के द्वारा केन्द्रीय तथा राज्य सरकार को दिए जाते हैं। ऐसा करने पर वे स्वस्थ समाज का निर्माण कर सकेंगे। संविधान में कुछ ऐसे प्रावधान भी रखे गए हैं, जो उन व्यक्तियों की सुरक्षा करें तथा उनका विकास करे, जो गरीब तथा सामाजिक रूप से वंचित हैं। उदाहरण के तौर पर अनुसूचित जातियां, अनुसूचित कबीले तथा भारत में अन्य पिछड़ी जातियां व स्त्रियां।

9. आपातकालीन प्रावधान (Emergency Provisions) : संविधान बनाने वालों ने इस चीज को भी ध्यान में रखा कि कुछ इस तरह की परिस्थितियां भी उत्पन्न हो सकती हैं, जब सरकार सामान्य रूप से कार्य न कर सके। ऐसी परिस्थिति के समय संविधान ने कुछ आपातकालीन प्रावधान भी रखे हैं।

10. मौलिक अधिकार (Fundamental Rights) : मौलिक अधिकारों का आशय नागरिकों को प्रदत्त ऐसे अधिकार और स्वतंत्रता से है, जिन्हें राज्य तथा केन्द्र सरकार के विरुद्ध भी लागू किया जा सकता है। इस तरह ये कुल छह अधिकार हैं। अनुच्छेद-31 के तहत प्राप्त सम्पत्ति के मौलिक अधिकार को 1978 में संविधान के 44वें संशोधन अधिनियम की धारा-6 द्वारा समाप्त कर दिया गया है।

11. मौलिक कर्तव्य (Fundamental Duties) : 1976 में संविधान के 42वें संशोधन द्वारा मूल नागरिकों के दस मूल कर्तव्य बताए गए हैं। संविधान संशोधन अधिनियम-2002 द्वारा अभिभावकों या माता-पिता के लिए उनके 6-14 वर्ष की आयु वाले बच्चे को शिक्षा का अवसर प्रदान करने संबंधी 11वां मूल कर्तव्य जोड़ा गया है। वर्तमान में मौलिक कर्तव्यों की संख्या 11 है।

12. लचीला तथा कठोर संविधान (Rigid and Flexible Constitution) : भारतीय संविधान में संशोधन की जो प्रक्रिया अपनाई गई है, उसमें कठोरता और लचीलेपन का अनुपम मिश्रण मिलता है। इस प्रकार भारतीय संविधान में दक्षिण अफ्रीका की संविधान संशोधन प्रक्रिया जैसी मध्यमार्गी व्यवस्था को अपनाया गया है। यह न तो इंग्लैण्ड के परम्पराओं से निर्मित संविधान की तरह लचीला है और न ही अमेरिकी संविधान की तरह अत्यधिक कठोर।

13. राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांत (Directive Principles of State Policy) : नीति-निर्देशक सिद्धांत कल्याणकारी राज्य की भावना से, समाजवाद की भावना से, महात्मा गांधी जी की भावनाओं से तथा मानव कल्याण की भावना से प्रेरित होकर संविधान में शामिल किए गए हैं। संविधान के भाग चार में शासन संचालन के लिए अनुच्छेद 36 से 51 तक कुछ निर्देशक तत्त्वों का वर्णन किया गया है।

14. एकल नागरिकता (Unitary Citizenship) : साधारणतः संघात्मक राज्य में दोहरी नागरिकता पाई जाती है—संघ की नागरिकता तथा राज्य की नागरिकता। अमेरिका जैसे संघात्मक संविधान में दोहरी नागरिकता का प्रावधान है, परंतु भारतीय संविधान में इकहरी नागरिकता की व्यवस्था की गई है। प्रत्येक भारतीय सम्पूर्ण देश का नागरिक है तथा प्रत्येक राज्य के नागरिकों को समान नागरिकता व अधिकार प्राप्त हैं।

उपरोक्त विषय का शिक्षाशास्त्रीय विश्लेषण (Pedagogical Analysis of Upper Subject)

उपरोक्त सामग्री सामाजिक विज्ञान का उप-विषय 'भारतीय संविधान' की विषय-वस्तु का सम्पूर्ण समायोजन करती है। इस उप-विषय प्रकरण अथवा इकाई अध्ययन शैली के अन्तर्गत कक्षा-कक्ष में प्रस्तुत किया गया। इसको सरलतम रूप प्रदान करने व बोधगम्य बनाने के लिए विभिन्न शैक्षिक विधियों, प्रविधियों तथा तकनीकों का प्रयोग शिक्षण के समय किया गया। इस 'उप-विषय' के शिक्षाशास्त्रीय विश्लेषण को निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है :

I. **विषय-वस्तु का विश्लेषण (Content Analysis)** : शिक्षाशास्त्रीय विश्लेषण में सबसे पहले उप-विषय (भारतीय संविधान) की विषय-वस्तु का विश्लेषण किया जाता है। इस उप-विषय की विश्लेषण प्रक्रिया को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है—

(i) प्रस्तावना का अर्थ
(ii) भारतीय संविधान की प्रस्तावना
(iii) संविधान का अर्थ
(iv) भारतीय संविधान के मुख्य सिद्धांत
(v) भारतीय संविधान की मुख्य विशेषताएं—

- संघीय संरचना
- लिखित तथा निर्मित
- सबसे विस्तृत
- धर्मनिरपेक्ष राज्य
- संविधान शासन की व्यवस्था
- स्वतन्त्र निर्णय
- सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार
- कल्याणकारी राज्य की स्थापना
- आपातकालीन प्रावधान
- कठोर एवं लचीला

(vi) मौलिक कर्तव्यों का अर्थ
(vii) भारतीय संविधान में वर्णित मौलिक कर्तव्य—

- संविधान का पालन करना,
- राष्ट्रीय झंडे व राष्ट्रगान का सम्मान करना,
- आपसी-भाईचारे का विकास करना,
- स्वतन्त्रता संघर्ष के महान आदेशों का पालन करना,
- देश की प्रभुसत्ता एवम् अखण्डता की सुरक्षा करना,
- देश की सुरक्षा एवं सेवा के लिए सदा तत्पर रहना,
- राष्ट्रीय धरोहर तथा संयुक्त संस्कृति का संरक्षण,
- प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण,
- वातावरण व अन्य जीवों का संरक्षण,
- सार्वजनिक सम्पत्ति की सुरक्षा,
- अहिंसा का पालन करना,
- व्यक्तिगत एवं सामूहिक क्रियाओं में श्रेष्ठता का विकास इत्यादि।

. **अपेक्षित व्यवहारगत परिवर्तनों के संदर्भ में उद्देश्य निर्माण (Objective Formation in the t of Expected Behavioural Changes)** : उपरोक्त इकाई या प्रकरण की विषय-वस्तु का

विश्लेषण कर लेने के बाद हम बालकों के व्यवहार में निम्नलिखित तरह के व्यवहारगत परिवर्तनों की अपेक्षा कर सकते हैं–

(i) बालकों को संविधान के अर्थ का पता चलेगा।
(ii) संविधान निर्माण के उद्देश्यों की समझ उत्पन्न होगी।
(iii) बालकों को भारतीय संविधान प्रणाली का ज्ञान होगा।
(iv) बालक संविधान की प्रस्तावना के महत्त्व को समझने में समर्थ होंगे।
(v) संविधान में प्रस्तावना के औचित्य का ज्ञान छात्रों को होगा।
(vi) संविधान निर्माण समिति का ज्ञान बालकों को प्राप्त होगा।
(vii) भारतीय संविधान की विशेषताओं का ज्ञान बालकों को होगा।
(viii) भारतीय संविधान को लचीला तथा कठोर दोनों क्यों कहा जाता है, इसका ज्ञान बालकों को प्राप्त होगा।
(ix) विभिन्न धर्म होते हुए भी भारत कैसे एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है, इसका ज्ञान बालकों को प्राप्त होगा।
(x) वयस्क मताधिकार के अर्थ को बालक समझने में सक्षम होंगे।
(xi) संविधान में वर्णित मौलिक कर्तव्यों के अर्थ तथा महत्त्व समझने की समझ बालकों में उत्पन्न होगी।
(xii) कर्तव्यों की पालना क्यों जरूरी होती है, इसका ज्ञान बालकों को प्राप्त होगा।
(xiii) संविधान के आपातकालीन प्रावधानों के विषय में छात्रों को जानकारी प्राप्त होगी।
(xiiv) कल्याणकारी राज्य के अर्थ व स्वरूप की जानकारी छात्रों को प्राप्त होगी।
(xv) दुनिया के सबसे विस्तृत संविधान के विषय में बालकों को ज्ञान प्राप्त होगा।

III. शिक्षण विधियों, प्रविधियों, अनुदेशनात्मक सामग्री व अध्यापक-छात्र अन्तःक्रिया का विवरण (Narration of Teaching Methods, Skills Instructional Material and Pupil-Teachers' Interaction) : कक्षा-कक्ष में प्रस्तुत प्रकरण को पढ़ाते समय शिक्षक व्याख्यान, कहानी कथन, परिचर्चा, गोष्ठी, व्याख्या विधि आदि का प्रयोग करेगा। इसे निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

(i) चार्ट के माध्यम से शिक्षक कक्षा-कक्ष में बालकों को संविधान का अर्थ समझाइए।
(ii) स्लाइडों का प्रयोग करके अध्यापक कक्षा-कक्ष में बालकों को संविधान के महत्त्व से अवगत करवाएगा।
(iii) वृत्त-चित्र के माध्यम से अध्यापक कक्षा-कक्ष में बालकों को संविधान निर्माण की प्रक्रिया से अवगत करवाएगा।
(iv) वृक्ष-चार्ट के माध्यम से संविधान में वर्णित मौलिक कर्तव्यों का ज्ञान शिक्षक छात्रों को करवाएगा।
(v) राष्ट्रीय झंडे का चित्र कक्षा-कक्ष में लगाकर उसमें रंगों के छिपे अर्थ को बताएगा। इससे बालक राष्ट्रीय झंडे में प्रयुक्त रंगों का अर्थ जान पाएंगे।
(vi) राष्ट्रगान के अर्थ और महत्त्व को प्रकट करने के लिए शिक्षक विभिन्न दृश्य-श्रव्य साधनों का प्रयोग अपने शिक्षण के समय कक्षा-कक्ष में करेगा।
(vii) ट्रांसपेरेन्सीज शिक्षण तकनीक के प्रयोग से अध्यापक कक्षा-कक्ष में मौलिक कर्तव्यों पर छात्रों के सामने व्याख्यान प्रस्तुत करेगा।
(viii) समूह बनाकर परिचर्चा शिक्षण विधि के तहत अध्यापक कक्षा-कक्ष में संविधान नामक उप-विषय पर बालकों को विचार-विमर्श के लिए प्रोत्साहित करेगा।
(ix) शिक्षक छात्रों को स्वाध्याय के लिए प्रोत्साहन देगा।
(x) लोकसभा कार्य प्रणाली की रिकार्ड चल-चित्र दिखाकर अध्यापक संसदीय प्रणाली का ज्ञान बालकों को प्रदान करेगा।
(xi) नाट्य-शैली के माध्यम से अध्यापक बच्चों में संसदीय कार्य प्रणाली के महत्त्व को समझाने का कार्य करेगा।

IV. मूल्यांकन प्रक्रिया का विवरण (Narration of Evaluation Procedure) : कक्षा-कक्षा में शिक्षण कार्य समाप्त होने के बाद अध्यापक विद्यार्थियों के अर्जित ज्ञान का मूल्यांकन करने का प्रयास करेगा।

इस कार्य के लिए शिक्षक विविध मूल्यांकन विधियों तथा प्रविधियों का प्रयोग करेगा; जैसे–निबंधात्मक, लघु-उत्तरात्मक तथा वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के माध्यम से मूल्यांकन करेगा। इसके लिए अध्यापक बालकों से निम्न प्रकार के प्रश्न पूछेगा–

(1) निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions) : इसके अन्तर्गत निम्न प्रकार के प्रश्न अध्यापक द्वारा दिए जा सकते हैं–

(i) संविधान के विषय में आप क्या जानते हो? वर्णन करो।
(ii) संविधान की प्रस्तावना पर एक निबन्ध लिखो।
(iii) किसी भी देश के लिए संविधान की आवश्यकता क्यों होती है? व्याख्या करो।
(iv) भारत संविधान की निर्माण प्रक्रिया पर एक विस्तृत नोट लिखो।
(v) "भारतीय संविधान दुनिया" का एक अनोखा संविधान है–कथन को स्पष्ट करें।
(vi) भारतीय संविधान की मुख्य विशेषताओं का वर्णन करो।
(vii) मौलिक कर्तव्यों के विषय में आप क्या जानते हो? वर्णन करो।
(viii) मौलिक कर्तव्यों की उपयोगिता पर एक निबन्ध लिखो।
(ix) भारतीय संविधान में वर्णित मौलिक कर्तव्यों का वर्णन करो।

(2) लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions) : इसके अन्तर्गत अध्यापक निम्न प्रकार के प्रश्न दे सकता है–

(i) संविधान का अर्थ स्पष्ट करें।
(ii) प्रस्तावना का क्या अर्थ है?
(iii) भारतीय संविधान की निर्माण समिति में कौन-कौन सदस्य के रूप में चयनित किए गए थे?
(iv) भारतीय संविधान को कब पारित किया गया था?
(v) भारतीय संविधान के निर्माण में कुल कितना समय लगा था।
(vi) संविधान सभा की प्रारूप समिति के अध्यक्ष कौन थे?
(vii) संविधान सभा के स्थायी अध्यक्ष कौन थे।
(viii) संसदीय शासन प्रणाली का क्या अर्थ है?
(ix) भारतीय संसदीय शासन प्रणाली में उच्च सदन का क्या नाम है?
(x) मौलिक कर्तव्य किन्हें कहा जाता है?
(xi) हमारे राष्ट्रीय झण्डे में कितने रंग हैं?

(3) वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions) : इन प्रश्नों के निम्न उदाहरण हो सकते हैं–

(a) रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blank spaces) :

(i) भारतीय संविधान को ..... ई. में लागू किया गया था।
(ii) भारतीय संविधान में अनुच्छेदों की संख्या ..... है।
(iii) भारतीय संविधान को ..... पारित किया गया था।
(iv) भारतीय संविधान सभा के स्थायी अध्यक्ष ..... थे।
(v) भारतीय संविधान की प्रारूप समिति के अध्यक्ष ..... थे।
(vi) संविधान में मौलिक कर्तव्य ..... है।
(vii) संविधान सभा के कुल सदस्यों की संख्या ..... थी।

(b) सत्य/असत्य का चयन करें (Identify True/False) :

(i) संविधान सभा का गठन 1946 ई. में किया गया था।
(ii) संविधान सभा में कांग्रेस सदस्यों का बहुमत था।
(iii) संविधान सभा की प्रारूप समिति के अध्यक्ष श्री राजेन्द्र प्रसाद थे।
(iv) संविधान सभा के स्थायी अध्यक्ष डॉ. भीमराव अम्बेडकर थे।

पाठ्यक्रम : अर्थ, महत्त्व, सिद्धांत, आलोचनात्मक मूल्यांकन, सुझाव एवं उपागम

8

(Curriculum : Meaning, Importance, Principles, Critical Appraisal, Suggestions and Approaches)

परिचय
(Introduction)

पाठ्यक्रम शिक्षा का एक अभिन्न अंग है, जिसके द्वारा शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति होती है। शिक्षा के सम्पूर्ण क्षेत्र में इसका एक विशेष स्थान है, जो उद्देश्यों एवं आदर्शों के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह एक ऐसा साधन है जो छात्र तथा अध्यापक को जोड़ता है। अध्यापक पाठ्यक्रम के माध्यम से छात्र के मानसिक, शारीरिक, नैतिक, सांस्कृतिक, संवेगात्मक, आध्यात्मिक तथा सामाजिक विकास के लिए प्रयास करता है। पाठ्यक्रम एक प्रकार से अध्यापक के बाद छात्रों के लिए दूसरा पथ प्रदर्शक है। शिक्षालय में होने वाले समस्त कार्यक्रम का आधार पाठ्यक्रम ही है।

इसे यदि शिक्षा के कार्यक्रम का **'प्राण'** कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति न होगी। कुछ विद्वानों ने तो शिक्षा एवं विद्यालय का दर्शनशास्त्र भी कहा है। पाठ्यक्रम की रूपरेखा एवं उसका संगठन, शिक्षण की निपुणता, उसके उद्देश्यों और सामाजिक आवश्यकताओं के प्रति उसकी उपयुक्तता निर्धारित करता है। इसके महत्त्व को देखते हुए यह आवश्यक हो जाता है कि इसका नियोजन वैज्ञानिक तरीके से किया जाए। इस बात को ध्यान में रखते हुए इस अध्याय के अन्तर्गत हम पाठ्यक्रम के विविध पहलुओं का अध्ययन निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत करेंगे–

- पाठ्यक्रम की धारणा व अर्थ
- पाठ्यक्रम का महत्त्व
- पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धांत
- पाठ्यक्रम का मूल्यांकन
- पाठ्यक्रम के सुधार के लिए सुझाव
- सामाजिक विज्ञान आयोजन के संगठन के उपागम

पाठ्यक्रम की अवधारणा व अर्थ
(Concept and Meaning of Curriculum)

☐ **पाठ्यक्रम की अवधारणा व अर्थ को स्पष्ट कीजिए।**
(Explain the concept and meaning of curriculum.)

उत्तर : विद्यालय में शिक्षा का कुछ विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति के लिए योजनाबद्ध व सुनियोजित ढंग से ज्ञान प्रदान किया जाता है। ये उद्देश्य व्यक्ति के व्यवहार परिवर्तन के ढंग, मात्रा, दिशा, साधनों आदि से संबंधित हो सकते हैं। ये सभी उद्देश्य किसी विशेष माध्यम से ही पूर्ण किए जा सकते हैं तथा इन माध्यमों में सर्वाधिक उपयुक्त व महत्त्वपूर्ण नाम पाठ्यक्रम का आता है। इस प्रकार कुछ निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के

लिए व्यवस्थित ढंग से नियोजित किए जाने के कारण पाठ्यक्रम को शिक्षा के एक औपचारिक माध्यम के रूप में देखा गया है। पाठ्यक्रम की अवधारणा व अर्थ को निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत समझा जा सकता है–

1. **पाठ्यक्रम का शाब्दिक अर्थ (Etlymological Meaning of Curriculum)** : पाठ्यक्रम के लिए अंग्रेजी में 'करीक्यूलम' शब्द का प्रयोग किया जाता है। **'करीक्यूलम'** शब्द की उत्पत्ति लैटिन शब्द 'क्यूरेर' (Currere) से हुई है। इसका मतलब है–दौड़ करना अथवा भागना। जैसे–दौड़ के मैदान में कोई दौड़क अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है, वैसे ही पाठ्यक्रम के द्वारा विद्यार्थी निश्चित उद्देश्यों को प्राप्त कर सकता है। पाठ्यक्रम की सबसे लोकप्रिय परिभाषा कनिंघम के अनुसार, "पाठ्यक्रम अध्यापक रूपी कलाकार के हाथ में वह साधन है, जिसके माध्यम से वह अपने पदार्थ रूपी छात्र को अपने कलागृह रूपी स्कूल में अपने उद्देश्य के अनुसार विकसित अथवा रूप प्रदान करती है।" इसमें कोई संदेह नहीं है कि कलाकार का अपने पदार्थ को अपने आदर्शों के अनुकूल ढालने की बहुत स्वतंत्रता है, क्योंकि कलाकार का पदार्थ निर्जीव है, परंतु स्कूल में अध्यापक का पदार्थ अर्थात् छात्र सजीव है। पुराने समय में जबकि आवश्यकताएं सीमित थी, साधन सीमित थे, अध्यापक के अपने पदार्थ अर्थात् छात्र को नया रूप देने में पूरी स्वतंत्रता थी, परंतु अब बदलती हुई परिस्थितियों में अध्यापक की यह महत्ता पहले से कम हो गई है। फिर भी निश्चय ही अध्यापक के हाथ में पाठ्यक्रम बहुत ही महत्त्वपूर्ण साधन है।

2. **पाठ्यक्रम का संकुचित तथा व्यापक अर्थ (Narrow and Broader Meaning of Curriculum)** : आमतौर पर लोग पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रम भेद नहीं करते हैं। पाठ्यक्रम को दो अर्थों में लिया जा सकता है–संकुचित व व्यापक। संकुचित अर्थ में पाठ्यक्रम केवल पाठ्यचर्या से अधिक कुछ नहीं। इस मत के अनुसार विभिन्न विषयों के अन्तर्गत पढ़ाए जाने वाले विषयों के तथ्यों की सीमा या विस्तार निश्चित कर दिया जाता है, जिसमें सैद्धांतिक ज्ञान का स्वरूप होता है तथा जिसका निर्माण शिक्षाविद् करते हैं, परंतु व्यापक अर्थ में पाठ्यक्रम का तात्पर्य उन सभी अनुभवों से लिया जाता है, जिन्हें बालक अपनी रुचियों तथा आवश्यकताओं के अनुसार विभिन्न क्रियाओं द्वारा कक्षा के अंदर या बाहर हर समय प्राप्त करता रहता है। इस प्रकार पाठ्यवस्तु किसी स्तर के पाठ्यक्रम का वह भाग है, जिसमें उस स्तर के लिए सैद्धांतिक विषयों के ज्ञान की सीमा निश्चित की जाती है। जबकि पाठ्यक्रम में नियोजित शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए विद्यालय के अंदर तथा विद्यालय के बाहर जो कुछ भी नियोजित रूप से किया जाता है, वह सीमित होता है।

3. **पाठ्यवस्तु तथा पाठ्यक्रम में अंतर (Difference between Syllabus and Curriculum)** : पाठ्यवस्तु पाठ्यक्रम का केवल एक भाग है, जबकि पाठ्यक्रम शिक्षण प्रक्रिया का पूर्ण तथा अभिन्न अंग है। पाठ्य वस्तु का स्वरूप सैद्धांतिक ज्ञान होता है तथा इसका निर्माण शिक्षाविद् करते हैं, जबकि पाठ्यक्रम का स्वरूप व्यापक होता है तथा इसका निर्माण अध्यापक स्वयं करता है। पाठ्यवस्तु में ज्ञानात्मक पक्ष तथा विषय से संबंधित क्रियाओं पर बल दिया जाता है, जबकि पाठ्यक्रम में छात्र के संतुलित एवं सर्वांगीण बिकास तथा ज्ञानात्मक, कौशलात्मक व भावात्मक आदि सभी पक्षों पर बल दिया जाता है।

4. **पाठ्यक्रम की पुरानी अवधारणा (Old Concept of Curriculum)** : पुरानी अवधारणा में पाठ्यक्रम केवल पाठ्यवस्तु के अध्ययन तक सीमित है। इसका अर्थ मात्र तथ्यों का ज्ञान प्राप्त करना था, जो भिन्न-भिन्न विषय प्रदान करते थे या पाठ्यक्रम संक्षिप्त और मौखिक प्रकृति का प्रतीक था। इसका कारण यह था कि प्राचीन समय में शिक्षा का उद्देश्य बहुत सीमित था। इसलिए विद्यार्थियों को भाषाओं, सामाजिक विज्ञान तथा भौतिक विज्ञान आदि का मौखिक ज्ञान करा देना ही पाठ्यक्रम में शामिल था। पाठ्यक्रम की पुरानी अवधारणा को निम्न प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है–

कनिंघम के अनुसार, "पाठ्यक्रम कलाकार के हाथों में वह यंत्र साधन है, जिससे वह अपनी वस्तु (छात्र) को अपनी कला-कक्ष (विद्यालय) में अपने आदर्शों (उद्देश्यों) के अनुसार बनाता है।"

मैस्सी के अनुसार, "पाठ्यक्रम छात्रों के लिए निर्धारित निर्देश सामग्री है।"

कार्टर. वी.गुड के अनुसार, "पाठ्यक्रम निर्देशन की विशिष्ट सामग्री अथवा पाठ्य-वस्तु की एक सम्पूर्ण

तथा सामान्य योजना है, जिसे स्कूल छात्रों के सम्मुख इसलिए प्रस्तुत किया जाता है कि वे व्यावसायिक जगत में पेशे से प्रवेश करके स्नातक बनने अथवा प्रमाण-पत्र प्राप्त करने के योग्य बन जाएं।"

कोमीनियस के मतानुसार, "पानी, पृथ्वी, आकाश, पाताल, मानव-शरीर, आत्मा, पवित्र-ग्रंथ, कलाओं, अर्थशास्त्र, राजव्यवस्था, अर्थ, संरचना, धर्म में ऐसा कुछ भी नहीं है, जिससे बुद्धिमता के इन छोटे उम्मीदवारों (प्रतियोगियों) को अपरिचित रखा जा सके।"

डॉ. आर.एन. सक्सेना के अनुसार, "पाठ्यक्रम स्कूलों में निर्देशन के लिए एक निश्चित क्रम में व्यवस्थित किए गए विषय-समूहों के अध्ययन की विषय-वस्तु है।"

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि पाठ्यक्रम केवल कुछ ज्ञान एवं कुशलता का एक संग्रह थी, जिसमें बालक की आयु, आवश्यकताओं, दृष्टिकोण अथवा क्षमता की पूरी तरह से अवहेलना होती थी। इसकी प्रकृति मौखिक थी।

5. **पाठ्यक्रम की आधुनिक अवधारणा (New Concept of Curriculum)** : हमारा समाज गतिशील है। इसमें निरंतर परिवर्तन आते ही रहते हैं। कई बार ये परिवर्तन निरंतरता के कारण दिखाई नहीं देते तथा कई बार ये अचानक होने के कारण दिखाई देते हैं। जहां एक ओर समाज में परिवर्तनों में निरंतरता देखने में आ रही है तो दूसरी ओर ज्ञान का विस्फोट भी हो रहा है। ज्ञान विस्फोट होने के कारण इसमें से विद्यार्थियों की आवश्यकताओं, रुचियों तथा रुझानों के अनुसार चुनाव करने की आवश्यकता है तथा यह निश्चित करना है कि यह ज्ञान विद्यार्थियों को कैसे प्रदान किया जाए। वास्तविकता तो यह है कि हमें शैक्षिक उद्देश्यों की व्यापकता को ध्यान में रखते हुए पाठ्यक्रम निर्माण पर अधिक ध्यान देना पड़ेगा। इसलिए आधुनिक पाठ्यक्रम में बालकों की आवश्यकताओं, रुचियों, प्रवृत्तियों तथा क्षमताओं को ध्यान में रखना पड़ेगा ताकि इसमें व्यावहारिक क्रियाओं को शामिल किया जा सके। इन बातों को ध्यान में रखते हुए कुछ शिक्षाशास्त्रियों ने पाठ्यक्रम की नई धारणा के अनुरूप निम्नलिखित कुछ परिभाषाएं दी हैं, जो इस प्रकार हैं—

हार्न के अनुसार, "पाठ्यक्रम वह है, जिसे बालक को पढ़ाया जाता है। यह सीखने तथा शांतिपूर्वक पढ़ने से कुछ अधिक है। इसमें उद्योग, व्यवसाय, ज्ञानोपार्जन अभ्यास तथा क्रिया शामिल होती है। इस प्रकार यह शिक्षार्थी के स्नायुमण्डल के संगठन में होने वाली गतियों तथा संवेगात्मक तत्त्वों को व्यक्त करता है।"

क्रो एंड क्रो के अनुसार, "पाठ्यक्रम में बच्चे के वे सभी अनुभव शामिल हैं, जिन्हें वह स्कूल में या स्कूल के बाहर प्राप्त करता है। इन अनुभवों को एक कार्यक्रम के रूप में नियोजित किया जाता है जो बच्चे के मानसिक, शारीरिक, सामाजिक, भावात्मक, आध्यात्मिक तथा नैतिक विकास के लिए बनाया जाता है।"

मुनरो के अनुसार, "पाठ्यक्रम में वे सभी अनुभव शामिल होते हैं, जिनकी स्कूल द्वारा शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयोग में लाया जाता है।"

फ्रोबेल के अनुसार, "पाठ्यक्रम को मानव जाति के समूचे ज्ञान एवं अनुभव का केन्द्र बिन्दु समझना चाहिए।"

जॉन डी.वी. के अनुसार, "पाठ्यक्रम की योजना में वर्तमान जीवन की आवश्यकताओं की अनुकूलता का ध्यान रखना चाहिए। इसलिए इसका चयन इस प्रकार हो कि हमारे सामान्य सामूहिक जीवन में सुधार हो ताकि हमारा भविष्य हमारे अतीत से अच्छा हो।"

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि बच्चों के एवं उनके माता-पिता तथा शिक्षकों के जीवन में आने वाली समस्त क्रियाओं को आधुनिक पाठ्यक्रम के अंतर्गत रखा जाता है। शिक्षार्थी के काम करने के समय में जो कुछ भी कार्य होता है, उन सभी से पाठ्यक्रम का निर्माण होता है। इसके विस्तृत अर्थ में इसके अन्तर्गत समस्त विद्यालयी वातावरण आता है।

6. **प्राचीन और आधुनिक पाठ्यक्रम की अवधारणा में अंतर (Difference Between the Old and New Concept of Curriculum)** : प्राचीन पाठ्यक्रम केवल विषयों का सैद्धांतिक ज्ञान, विषय-वस्तु के महत्त्व व रटने की पद्धति तक सीमित है, वहीं आधुनिक धारणा का पाठ्यक्रम सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक

...की संतुलित तथा सामंजस्यपूर्ण जानकारी प्राप्त करवाता है। इसमें विद्यालय की सम्पूर्ण गतिविधियों, ...कौशल तथा भावात्मक पक्ष के विकास पर ध्यान दिया जाता है। प्राचीन पाठ्यक्रम में परम्परागत ...पद्धतियों का प्रयोग होता है, जैसे—भाषण विधि, पाठ्य-पुस्तक विधि आदि जबकि आधुनिक पाठ्यक्रम ...शिक्षण की आधुनिक पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है। जैसे—वाद-विवाद विधि, समस्या विधि, ...योजना विधि आदि।

निष्कर्ष (Conclusion) : उपरोक्त सम्पूर्ण अध्ययन के बाद कहा जा सकता है कि पाठ्यक्रम का अर्थ ...सभी अनुभवों से है जो कि विद्यार्थी स्कूल के मार्गदर्शन से प्राप्त करते हैं। इसमें श्रेणी में की गई क्रियाएं ...खेल भी सम्मिलित हैं जोकि मानव और समाज दोनों की भलाई को बढ़ाती हैं। पाठ्य-वस्तु, पाठ्यक्रम ...का भाग है, जिसका संगठन श्रेणी (कक्षा) में प्रयोग के लिए किया जाता है। इसमें विद्यार्थियों और प्रबंधकों ...के लिए विषय-सामग्री, विधियों, सहायक सामग्री के प्रयोग और मार्गदर्शक के लिए सुझाव होते हैं।

पाठ्यक्रम का महत्त्व
(Importance of Curriculum)

...पाठ्यक्रम के महत्त्व की विस्तारपूर्वक व्याख्या कीजिए।
(Explain in the details the importance of Curriculum.)

उत्तर : प्रत्येक समाज की अपनी आवश्यकताएं, आकांक्षाएं, मान्यताएं एवं मूल्य होते हैं, जिन्हें ध्यान में ...रखकर शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए जिन विषयों का ज्ञान ...एवं क्रियाओं को आवश्यक समझा जाता है, उन्हें पाठ्यक्रम में स्थान दिया जाता है। इस प्रकार नियोजित ...शिक्षा के लिए पाठ्यक्रम की बहुत आवश्यकता होती है। इसकी यह आवश्यकता ही इसको महत्त्वपूर्ण बनाती है। पाठ्यक्रम की आवश्यकता अथवा महत्त्व को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है—

1. **शिक्षण-सामग्री का निर्धारण (Determination of Study Material) :** शिक्षण-सामग्री का निर्धारण पाठ्यक्रम ही करता है। बिना पाठ्यक्रम के शिक्षा-प्रक्रिया दृष्टिहीन हो जाएगी, क्योंकि इसके अभाव में हम यह नहीं जान सकते कि क्या पढ़ाया जाए।

2. **शिक्षण विधियों का चुनाव (Selection of Methods of Teaching) :** उचित शिक्षण विधि का ज्ञान शिक्षक के लिए बहुत आवश्यक है। पाठ्यक्रम के अभाव में यह नहीं जाना जा सकता है कि विषय-वस्तु को कैसे पढ़ाया जाए तथा इसके लिए कौन-सी शिक्षण विधियों का प्रयोग किया जाए। इसलिए विद्यार्थी तथा सफल अध्यापक दोनों के लिए पठन-पाठन की योजना पूरी तरह से पाठ्यक्रम पर ही आधारित होती है।

3. **मूल्यांकन सहज और सरल होता है (Evaluation becomes Easier and Convenient)** : किसी स्तर विशेष के लिए पाठ्यक्रम निश्चित होने से स्तर विशेष के विद्यार्थियों की योग्यता का मूल्यांकन करना सम्भव होता है। यदि किसी स्तर के लिए कोई पाठ्यक्रम नहीं होगा तो अध्यापक बच्चों की योग्यता का मूल्यांकन कैसे कर सकेगा। अध्यापक किसी स्तर विशेष के बच्चों की योग्यता का मूल्यांकन इस पाठ्यक्रम के आधार पर ही करते हैं।

4. **मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति (Fulfills Psychological Needs) :** निश्चित पाठ्यक्रम से बच्चों की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जो सप्रयोजन क्रियाओं में रुचि लेता है और ऐसा करना चाहता है, जिससे उसकी वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति होती है और भावी आवश्यकताओं की पूर्ति की सम्भावना बढ़ती है। पाठ्यक्रम का निर्माण इन बातों को ध्यान में रखकर किया जाता है। इसलिए बच्चे उसे पूरा करने में रुचि दिखाते हैं।

5. **शिक्षा की प्रक्रिया का व्यवस्थित होना (Educational Process Becomes Organised) :** पाठ्यक्रम एक ऐसा लेखा-जोखा है, जिसमें यह स्पष्ट किया जाता है कि शिक्षा के किस स्तर पर, जैसे—पूर्व

प्राथमिक, प्राथमिक व माध्यमिक आदि पर विद्यालयों में किन पाठ्य-विषयों का कितना ज्ञान एवं कितनी दक्षता का विकास किया जाएगा। इस प्रकार निश्चित पाठ्यक्रम शिक्षा की क्रिया को ... है।

6. उद्देश्यों की प्राप्ति सम्भव होती है (Realisation of Objectives Becomes Feasible) ... पाठ्यक्रम का निर्माण उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किया जाता है। यदि पाठ्यक्रम को सुचारु रूप से ... जाता है तो शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति होती है। इस संदर्भ में हमें यह बात जान लेनी चाहिए कि ... यह अनुभव करते हैं कि कोई निश्चित पाठ्यक्रम न हो तो हम यह नहीं जान सकते कि हम किन ... ज्ञान और किन क्रियाओं के प्रशिक्षण से अपने उद्देश्यों की प्राप्ति कर रहे हैं और कौन-सी क्रियाएं ...

7. उपयुक्त पाठ्य-पुस्तकों का निर्माण सम्भव (Possible to Prepare Appropriate Text-books) : निश्चित पाठ्यक्रम होने से लेखक उपयुक्त पाठ्य-पुस्तकें तैयार कर देते हैं और उनमें ... सामग्री को ही प्रवेश देते हैं। पाठ्य-पुस्तकों के अभाव में शिक्षा कितनी अनियंत्रित और अव्यवस्थित ... इसकी हम कल्पना कर सकते हैं।

8. समय और शक्ति का सदुपयोग होना (Appropriate Use of Time and Energy) : निश्चित पाठ्यक्रम अध्यापक और विद्यार्थी दोनों के कार्य को निश्चित कर देता है। इससे अध्यापकों को ... पता रहता है कि उन्हें विद्यार्थियों को क्या सीखने में सहायता करनी है और विद्यार्थियों को यह पता ... है कि उसे क्या सीखना है। अध्यापक अथवा विद्यार्थी किसी को भी भटकने की कोई गुंजाइश नहीं ... परिणामतः शिक्षा की प्रक्रिया बड़ी सुचारु रूप से चलती और अध्यापक तथा विद्यार्थियों दोनों ही निश्चित समय में निश्चित कार्यों को पूरा करते हैं। इससे समय और शक्ति दोनों का सदुपयोग होता है।

9. शिक्षा का स्तर समान रहना (Maintains Uniform Standards of Education) : निश्चित पाठ्यक्रम से पूरे समाज की शिक्षा का स्तर समान रहता है। उसके परिणामों से हमें शिक्षा में सुधार की सही दिशा प्राप्त होती है। अनिश्चित पाठ्यक्रम की स्थिति में हम शिक्षा के स्तर के उठने तथा गिरने के कारणों का पता नहीं लगा सकते और उस स्थिति में शिक्षा में सुधार नहीं किया जा सकता।

10. विभिन्न प्रवृतियों या दर्शनों को प्रकट करना (Reflects Different Tendencies and Philosophies) : पाठ्यक्रम शिक्षा की विभिन्न प्रवृतियों तथा विभिन्न दर्शनों के परिवर्तन को दर्शाता है। दर्शन को क्रिया का असली जामा (पहनावा) पाठ्यक्रम पहनाता है।

11. चरित्र-चित्रण में सहायक (Helpful in Character Building) : पाठ्यक्रम का उद्देश्य बालकों में चरित्र-निर्माण एवं उचित नागरिकता का विकास करना होता है। इस प्रकार उचित पाठ्यक्रम चरित्र विकास में सहायक होता है। साधारण शब्दों में चरित्र निर्माण व नागरिकता के लिए उत्तम गुणों का विकास पाठ्यक्रम के द्वारा ही संभव है।

निष्कर्ष (Conclusion) : उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि यदि पाठ्यक्रम न हो तो कोई भी शिक्षण कार्य सम्पन्न नहीं किया जा सकता है। पाठ्यक्रम के द्वारा ही विद्यालय का कार्य संगठित और संतुलित रूप से चलता है। इसलिए विद्यार्थी तथा सफल अध्यापक दोनों के लिए पठन-पाठन की योजना पूरी तरह से पाठ्यक्रम पर ही आधारित होती है। बिना पाठ्यक्रम के इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धांत
(Principles of Curriculum Construction)

पाठ्यक्रम निर्माण के विविध सिद्धांतों की व्याख्या करो।
(Explain the various principles of curriculum construction.)

उत्तर : पाठ्यक्रम ही वह केन्द्र बिन्दु है, जिसके चारों ओर शिक्षात्मक प्रयास संगठित किया जाता है।

...बच्चों की वे समस्त क्रियाएं शामिल हैं, जिन्हें अध्यापक के मार्गदर्शन में व्यवस्थित किया जाता है। ...रचना बिना सोचे-समझे की जाने वाली क्रिया नहीं अपितु यह एक सुनियोजित क्रिया है। इसे इस ...सम्पन्न किया जाना चाहिए कि यह स्कूल के उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक सिद्ध हो। पहले से विद्यमान ...में शामिल की जाने वाली कोई भी नवीन क्रिया शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति की दिशा में एक निश्चित ...रूप में सिद्ध होनी चाहिए। प्रभावशाली पाठ्यक्रम रचना के लिए निम्नलिखित सिद्धांतों से सहायता ली ...सकती है :

1. **शिशु केन्द्रितता का सिद्धांत (Principle of Child Centredness) :** शिशु केन्द्रितता ...शिक्षा का नारा है। सामान्य बच्चों की क्रियाओं और आवश्यकताओं के आधार पर बनाया गया ...स्कूल के दायित्वों को पूरा करने का एक प्रभावशाली साधन है। पाठ्यक्रम बच्चे की रुचि, रुझान, ...तथा आवश्यकताओं के अनुकूल होना चाहिए। हम जानते हैं कि संसार में कोई दो बच्चे समान नहीं ...अतः उनके लिए पाठ्यक्रम भी भिन्न-भिन्न होना चाहिए, परंतु हर बच्चे के लिए अलग पाठ्यक्रम का ...नहीं किया जा सकता है। हां, बच्चों को उनकी रुचि, रुझान और योग्यता के अनुसार कुछ वर्ग ...में रखा जा सकता है। उदाहरण के तौर पर वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—विज्ञान में रुचि ...वाले छात्र, साहित्यिक रुचि रखने वाले छात्र, हस्त कार्य में रुचि लेने वाले छात्र आदि। इस दृष्टि से पाठ्यक्रम का नियोजन विभिन्न वर्गों में किया जा सकता है। इन सब वर्गों में भी अनेक ...का समावेश होना चाहिए और बच्चे को अपनी-अपनी रुचि के अनुकूल विषय एवं क्रियाएं चुनने के ...प्राप्त होने चाहिए। इसलिए पाठ्यक्रम के निर्माण का मुख्य सिद्धांत शिशु केंद्रितता के सिद्धांत को ही ...जाता है।

2. **एकीकरण का सिद्धांत (Principle of Integration) :** यह सिद्धांत इस तथ्य की ओर संकेत ...है कि पाठ्यक्रम विद्यार्थियों की आवश्यकताओं के अनुसार गठित किया जाना चाहिए ताकि वे अपने ...वातावरण के साथ अनुकूलन स्थापित कर सकें। उत्तम सीखने के लिए यह आवश्यक बन जाता है कि किसी स्तर के विद्यार्थियों के लिए पाठ्यक्रम तैयार करते समय सभी विषयों की पाठ्य सामग्री ऐसी होनी चाहिए, जिसे एक-दूसरे के आधार पर विकसित किया जा सके। इस प्रकार के पाठ्यक्रम को स्वीकृत पाठ्यक्रम ...कहते हैं। ऐसा पाठ्यक्रम व्यक्ति की आंतरिक पूर्णता में सहायक होता है और व्यक्ति तथा वातावरण में अनुकूलनता स्थापित करता है। अब शिक्षार्थी यह अनुभव करने लगे हैं कि पाठ्यक्रम को विभिन्न स्कूल विषयों में बांटना एक पुराना तथा व्यर्थ ढंग है।

3. **समवाय का सिद्धांत (Principle of Correlation) :** समवाय का सिद्धांत इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि ज्ञान एक सम्पूर्ण इकाई है और इसे अलग-अलग टुकड़ों में प्रदान नहीं किया जा सकता। समवाय एकीकरण को ठोस बनाता है, इसलिए पाठ्यक्रम तैयार करते समय उसमें उन्हीं विषयों और क्रियाओं को स्थान दिया जाए, जिनमें आपस में संबंध हो। विभिन्न विषयों की पाठ्य-सामग्री ऐसी होनी चाहिए, जिसे एक-दूसरे के आधार पर विकसित किया जा सके। इस प्रकार पाठ्यक्रम को कम समय तथा कम शक्ति लगाकर पूरा किया जा सकता है। समय और शक्ति का सदुपयोग और उत्तम सीखने की दृष्टि से इस सिद्धांत का पालन अवश्य किया जाना चाहिए।

4. **लचीलेपन का सिद्धांत (Principle of Flexibility) :** पाठ्यक्रम को बालकों की रुचियों, विभिन्नताओं, प्रवृत्तियों, दृष्टिकोणों तथा आवश्यकताओं के अनुकूल बनाने के लिए आवश्यक है कि यह लचीला तथा विविधतापूर्ण हो। हमें उन पर अनुपयुक्त विषयों का बोझ नहीं लादना चाहिए। यदि ऐसा किया जाए तो इससे उनके सामान्य विकास में बाधा पड़ती है। अतः पाठ्यक्रम में ज्ञान, कुशलता और मूल्यांकन के उन विस्तृत क्षेत्रों का समावेश किया जाना चाहिए, जो बालक की व्यक्तिगत भिन्नता के दृष्टिगत उनके विकास की प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हो।

5. **उपयोगिता का सिद्धांत (Principle of Utility) :** विषयों एवं क्रियाओं का क्रम उपयोगिता की

दृष्टि से होना चाहिए। पाठ्यक्रम की रचना करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बच्चों के
कौन-सा विषय अथवा कौन-सी विधि अधिक उपयोगी है। आधुनिक स्वतंत्र भारत में आर्थिक जीवन को
उठाने के लिए विज्ञान व तकनीक की शिक्षा देना, लोकतान्त्रिक देश होने के कारण उत्तम नागरिकता की
देना, चारित्रिक विकास के लिए नैतिक शिक्षा देना व धर्मनिरपेक्ष जैसे धार्मिक मूल्यों की शिक्षा
जरूरी है। इसी प्रकार शेष विषयों और क्रियाओं के लिए उनकी उपयोगिता की दृष्टि से ही पाठ्यक्रम में
समय निश्चित किया जाना चाहिए।

6. **विभिन्न स्तरों के लिए विभिन्न पाठ्यक्रम होने का सिद्धांत (Principle of Having Differ
Curriculum At Different Levels)** : मनोविज्ञान के ज्ञान से हमें पता चलता है कि भिन्न-भिन्न
के बच्चों के शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक और सामाजिक विकास में भिन्नता होती है। पाठ्यक्रम
निर्माण करते समय हमें विशेष स्तर के बच्चों की इस भिन्नता का ध्यान रखना चाहिए और पाठ्यक्रम
ही विषय एवं क्रियाएं रखनी चाहिए, जिन्हें बच्चे रुचिपूर्वक सक्रिय रूप से ग्रहण कर सकें और जो
मनोवैज्ञानिक और सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। इसी प्रकार पाठ्यक्रम बच्चे के जीवन
संबंधित और आदर्श जीवन की ओर ले जाने वाला होना चाहिए।

7. **पाठ्यक्रम शिक्षा के उद्देश्यों के अनुकूल होना चाहिए (The Curriculum Should be
Conformity with the Aims of Education)** : पाठ्यक्रम से ही शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति
होती है। इसलिए इनका नियोजन करते समय हमें शिक्षा के उद्देश्यों को सामने रखना चाहिए। इसमें
विषयों एवं क्रियाओं का समावेश करना चाहिए, जिनके ज्ञान और अभ्यास से बच्चे वैसे बन जाए, जैसा
उन्हें बनाना चाहते हैं। प्रत्येक स्तर पर पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय इन उद्देश्यों को ध्यान में रखना
आवश्यक है।

8. **मानव जीवन के समस्त उपयोगी अनुभवों का समावेश (Must include all the usef
Experiences of Human Life)** : पाठ्यक्रम में मानव जीवन के समस्त उपयोगी अनुभवों का समावे
होना चाहिए। किसी ने सच ही कहा कि शिक्षा मानव अनुभवों का पुनर्गठन और पुनः निर्माण है। हम
पूर्वजों से जो कुछ सीखते हैं, उसमें अपने अनुभवों को जोड़ कर उसका विकास करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति
किसी दूसरे के अनुभवों को अपने अनुभवों की कसौटी पर परखने का पूरा-पूरा अवसर देना चाहिए, तभी
सत्य और असत्य का निर्णय हो सकेगा।

9. **व्यापकता का सिद्धांत (Principle of Broadness)** : पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय ध्या
रखा जाए कि यह शैक्षिक विषयों से संबंधित पाठ्य-पुस्तकों तक ही सीमित न रहे। यह ऐसा होना चाहिए
छात्रों की समस्त शैक्षिक वातावरण की अभिव्यक्ति कराने की क्षमता रखता हो तथा साथ में यह भी ध्या
रखना होगा कि छात्रों की भावनाओं को ठेस न पहुंचे। यह व्यवस्था ही छात्रों के दृष्टिकोण को व्यापक बना
में सहायक सिद्ध हो सकती है।

10. **अवकाश के समय के सदुपयोग का सिद्धांत (Principle of Appropriate use of Leisu
Time)** : उपयुक्त पाठ्यक्रम अवकाश के समय का सदुपयोग भी सिखाता है। काम और अवकाश एक-दू
के साथ चलने चाहिए। पाठ्यक्रम में विभिन्न क्रियाओं की व्यवस्था होनी चाहिए ताकि विद्यार्थियों को केव
काम के लिए ही नहीं अपितु अवकाश के लिए प्रशिक्षित किया जा सके।

11. **सामूहिक जीवन के साथ सशक्त संबंध (Principle of Vital Relationship with Grou
Life)** : पाठ्यक्रम का सामूहिक जीवन के साथ सशक्त संबंध होना चाहिए। उसमें बच्चे को समझाने के लि
समाज के मुख्य तथा महत्त्वपूर्ण क्रियाओं से सम्पर्क स्थापित कराने का प्रयास होना चाहिए। इसका अर्थ
है कि पाठ्यक्रम में उत्पादन कार्य को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाए, क्योंकि उत्पादन कार्य संगठित मानव जी
की रीढ़ की हड्डी है।

12. **सामुदायिक केन्द्रितता का सिद्धांत (Principle of Community Centredness)** : आ

...का प्रौढ़ बनेगा। उसे अपने आपको समुदाय के उस समावेश के साथ संबंधित करना होगा, ...रहता है। इसलिए पाठ्यक्रम में कुछ ऐसे विषयों और क्रियाओं का समावेश होना चाहिए, जो उसे ...एक अच्छा नागरिक बनाने में सहायता प्रदान करे।

...अन्य सिद्धांत (Some other Principles) : पाठ्यक्रम के उपरोक्त सिद्धांतों के अतिरिक्त कुछ ...महत्वपूर्ण सिद्धांत हैं, जिन्हें निम्न प्रकार से समझा जा सकता है—

(i) पाठ्यक्रम के सामान्य ज्ञान एवं क्रियाएं अनिवार्य और शेष ऐच्छिक होनी चाहिए।
(ii) पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह बच्चों में कौतूहल जाग्रत करे, जिससे बच्चे ज्ञान को प्रकट करें।
(iii) पाठ्यक्रम में सीखने के अनुभवों में निरंतरता का सिद्धांत होना चाहिए।
(iv) पाठ्यक्रम का एक आवश्यक सिद्धांत है कि इस संस्कृति को बचाकर रखा जाए तथा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक प्रदान किया जाए।
(v) पाठ्यक्रम का संबंध जीवन से होना चाहिए।
(vi) पाठ्यक्रम ऐसा हो, जो बालक के संतुलित व्यक्तित्व के विकास में सहायक हो।
(vii) माध्यमिक स्तर के पाठ्यक्रम में व्यावहारिक समस्याओं का समावेश अवश्य होना चाहिए।
(viii) पाठ्यक्रम में बालकों को सृजनात्मक और कलात्मक रचना के कार्य करने का अवसर अवश्य मिलना चाहिए।
(ix) पाठ्यक्रम विकास के सिद्धांत, उत्तम आचरण के आदर्शों की उपलब्धि के सिद्धांत, सीखने के प्रति तत्परता के सिद्धांत, राष्ट्रीय लक्ष्यों एवं लोकतंत्रात्मक गुणों के विकास के सिद्धांत पर आधारित होना चाहिए।

...मिक शिक्षा आयोग द्वारा सुझाए गए पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धांत (...nciples of Curriculum Construction as Suggested by ...ondary Education Commission)

...माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसार, **"शिक्षा को लोगों के जीवन तथा आशाओं के साथ संबंधित करने ...इसे राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तन लाने के लिए पाठ्यक्रम ...करने से अधिक आवश्यक कार्य कोई भी नहीं।"** इस आयोग के अनुसार हम एक प्रजातन्त्रात्मक देश ...नागरिक हैं। अतः पाठ्यक्रम के निर्माण में हमें प्रजातन्त्र के मूल्यों तथा आदर्शों को अवश्य ध्यान में रखना ...। इसलिए पाठ्यक्रम का चुनाव करते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है—

1. **अनुभव का सिद्धांत (Principle of Experience) :** यह सिद्धांत कार्य को सम्पन्न करके सीखने के सिद्धांत का प्रतिपादन करता है। आयोग के मतानुसार विद्यालय का सम्पूर्ण जीवन ही पाठ्यक्रम समझना चाहिए। कक्षा शिक्षण के अतिरिक्त की जाने वाली क्रियाओं द्वारा प्राप्त किए गए अनुभवों को भी महत्त्व दिया जाना चाहिए।
2. **लचीलेपन का सिद्धांत (Principle of Elasticty) :** पाठ्यक्रम में पर्याप्त मात्रा में लचीलापन होना चाहिए। विद्यार्थियों में रुचि, रुझान तथा योग्यताओं में भिन्नता पाई जाती है। इसलिए पाठ्यक्रम में विषयों और क्रियाओं को अलग-अलग प्रवृत्तियों, रुचियों और मानसिक स्थितियों के अनुरूप रखा जाए।
3. **सामाजिक जीवन से संबंध स्थापित करने का सिद्धांत (Principle of Linking Curriculum with Community Life) :** पाठ्यक्रम सामाजिक जीवन से घनिष्ठ तथा समन्वित रूप से संबंधित होना चाहिए।
4. **अवकाश के सदुपयोग का सिद्धांत (Principle of Appropriate use of Leisure) :** पाठ्यक्रम छात्र को केवल काम के लिए ही नहीं वरन् अवकाश के समय का सदुपयोग करने के

लिए भी प्रशिक्षित करता है। अतः पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जो विद्यार्थियों को न केवल ... अपितु अवकाश के लिए भी प्रशिक्षित करे और इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए ... सौंदर्य-बोधक तथा क्रीड़ात्मक क्रियाओं को इसमें शामिल किया जाए।

5. **पाठ्य-विषयों के साथ पारस्परिक संबंध का सिद्धांत (Principle of Correlation of Subjects) :** **माध्यमिक शिक्षा आयोग** के अनुसार, "पाठ्यक्रम के विषयों को एक-दूसरे से ... संबंधित करके रखा जाना चाहिए। उन्हें अलग-अलग पढ़ाना अवैज्ञानिक होगा। ऐसा न होने ... इससे शैक्षिक मूल्यों की प्राप्ति के लिए सामाजिक सौंदर्यबोधक तथा क्रीड़ात्मक क्रियाओं ... बिल्कुल अलग तथा असंबंधित कर दिया जाए।"

निष्कर्ष (Conclusion) : उपरोक्त अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि यदि पाठ्यक्रम ... निर्माण में ऊपर बताए गए सिद्धांतों को शामिल किया जाता है, तो निश्चय ही इससे पाठ्यक्रम की उपयोगिता ... सिद्ध होगी। इसके अतिरिक्त पाठ्यक्रम में समय-समय पर सुधार व परिवर्तन किया जाना भी आवश्यक ... किसी पाठ्यक्रम की उपयोगिता व सार्थकता तभी मानी जाएगी, जब अपने समाज के द्वारा निर्धारित उद्देश्यों ... की प्राप्ति करने में सहायक होगा।

पाठ्यक्रम का मूल्यांकन
(Evaluation of Curriculum)

❑ **पाठ्यक्रम मूल्यांकन की व्याख्या कीजिए।**
(Describe Curriculum Evaluation.)

उत्तर : पाठ्यक्रम मूल्यांकन से तात्पर्य किसी पाठ्यवस्तु एवं पाठ्य सामग्री से बालकों के व्यवहार में आने वाले परिवर्तनों के मापन से समझा जाता है। पाठ्यक्रम मूल्यांकन से पाठ्यक्रम द्वारा निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति किस सीमा तक हुई, यह भी जानने का प्रयास किया जाता है। इससे पाठ्यवस्तु की प्रभावशीलता, उपादेयता, संप्राप्तियां तथा व्यवहार परिवर्तन की प्रकृति व दिशा को मापा जाता है। विद्यालय द्वारा निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु पाठ्यक्रम का नियोजन किया जाता है तथा पाठ्यक्रम की उपयुक्तता हेतु किए जाने वाले परीक्षण को पाठ्यक्रम मूल्यांकन कहा जाता है। इसके अन्तर्गत पाठ्यक्रम प्रक्रिया के सभी पक्षों का मूल्यांकन, शैक्षिक उद्देश्य, उद्देश्य प्राप्ति हेतु अधिगम, अनुभवों व अन्तर्वस्तु का संगठन तथा शिक्षण विधियों का निर्धारण भी शामिल है। पाठ्यक्रम मूल्यांकन से होने वाले लाभों को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है-

(i) इससे बालकों में आए व्यवहारगत परिवर्तन का ज्ञान होता है।
(ii) बालकों में अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन की तुलना करना सम्भव होता है।
(iii) पाठ्यक्रम के द्वारा उद्देश्यों की प्राप्ति किस सीमा तक हुई, इसका ज्ञान भी पाठ्यक्रम मूल्यांकन द्वारा होता है।
(iv) पाठ्यक्रम मूल्यांकन के द्वारा ही पाठ्यक्रम नियोजकों को पृष्ठपोषण (Feedback) की प्राप्ति होती है।
(v) इसके आधार पर प्राप्त फीडबैक पर ही आगे के शिक्षण के कार्यों के लिए दिशा प्राप्त होती है।
(vi) पाठ्यक्रम मूल्यांकन भावी कार्यों हेतु उपयुक्त दिशा-निर्देश प्रदान करने वाली प्रक्रिया है।
(vii) ज्ञानात्मक, क्रियात्मक व भावात्मक क्षेत्र के परिवर्तनों को जानने में पाठ्यक्रम मूल्यांकन हमारी सहायता करता है।

पाठ्यक्रम की मूल्यांकन प्रक्रिया
(Evaluation Process of Curriculum)

पाठ्यक्रम विकास एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। यह एक चक्रीय प्रक्रिया है। व्हीलर महोदय ने पाठ्यक्रम विकास के जो पद बताये हैं, उनमे मूल्यांकन पांचवां व अंतिम पद है। परंतु यह अंतिम पद ही पुन

निर्देशन व पृष्ठपोषण प्रदान करके इस चक्र को गति प्रदान करता है। इस अंतिम चरण के द्वारा ही हमें यह ज्ञात होता है कि पहले पद में निर्धारित शैक्षिक उद्देश्यों को किस सीमा तक प्राप्त किया गया है तथा यदि उसे वांछित सीमा तक प्राप्त नहीं किया गया है, तो उसमें अपेक्षित संशोधन व परिवर्धन व परिवर्तन की आवश्यकता का भी ज्ञान होता है। दूसरे शब्दों में, उद्देश्यों के परिवर्तन व विकास हेतु दिशा निर्देश की प्राप्ति भी मूल्यांकन द्वारा संभव होती है।

मूल्यांकन पाठ्यक्रम विकास के प्रथम चरण के साथ-साथ दूसरे चरण पर भी प्रभाव डालता है। जब मूल्यांकन द्वारा शैक्षिक उद्देश्यों में परिवर्तन कर दिया जाता है, तब अधिगम अनुभवों का चयन भी पुनः निर्धारित उद्देश्यों के आधार पर किया जाने लगता है। इसके अतिरिक्त मूल्यांकन अधिगम अनुभवों के चुनाव हेतु आवश्यक सामग्री व तथ्यों को उपलब्ध कराता है तथा यह अधिगम अनुभवों की तत्परता का बोध भी कराता है, जोकि अधिगम अनुभवों के चयन में सहायक होता है।

पाठ्यक्रम विकास का तृतीय चरण है—अंतर्वस्तु का चयन करना। मूल्यांकन अधिगम अनुभवों के विषय में तत्परता व सहायक सामग्री प्रदान करके यह भी स्पष्ट करता है कि किस प्रकार की विषय सामग्री अधिगम अनुभवों के प्रस्तुतीकरण में सहायक होगी। दूसरे शब्दों में, मूल्यांकन पाठ्यवस्तु या अन्तर्वस्तु का मूल्यांकन करके उसकी उपयुक्तता के विषय में तथ्य प्रदान करता है।

पाठ्यक्रम विकास में चतुर्थ चरण के आधार पर अधिगम अनुभवों को उपयुक्त पाठ्य सामग्री के साथ संबद्ध कर दिया जाता है। इस संबंध में पाठ्यसामग्री व अधिगम अनुभवों को अध्ययन व अध्यापन की दृष्टि से प्रस्तुत किया जाता है। मूल्यांकन इस पक्ष पर भी ध्यान देता है तथा इस बात का बोध करता है कि उपरोक्त संगठन शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति में सक्षम है अथवा नहीं।

निष्कर्ष (Conclusion) : इस प्रकार स्पष्ट है कि मूल्यांकन एक व्यापक अवधारणा है तथा विकास के सभी पक्षों पर उपयुक्त प्रभाव डालता है। पाठ्यक्रम विकास के सभी चरणों से इसका संबंध है तथा इन सभी की उपयुक्तता का भी मूल्यांकन से ज्ञान प्राप्त होता है। मूल्यांकन की प्रक्रिया पाठ्यक्रम विकास की प्रक्रिया का चरण होते हुए भी निरंतर इसके सभी चरणों में चलती रहती है तथा अपने अगले चरण के लिए कुछ उपयुक्त व निश्चित दिशा निर्देश भी प्रदान करती है।

इस प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में मूल्यांकन का अपना विशेष महत्त्व है तथा पाठ्यक्रम नियोजकों, निमार्ताओं व शिक्षाविदों को इसको सदैव ध्यान में रखना चाहिए कि मूल्यांकन द्वारा ही सटीक निर्देशन व पृष्ठपोषण की प्राप्ति होना संभव है।

पाठ्यक्रम में सुधार के लिए सुझाव
(Suggestions for Improvement in Curriculum)

❑ **पाठ्यक्रम में सुधार के लिए दिए गए सुझावों का विवेचन कीजिए।**
(Discuss the suggestions for improvement in curriculum.)

उत्तर : माध्यमिक स्तर के पाठ्यक्रम में सुधार लाने के लिए निम्नलिखित सुझावों पर ध्यान देने की आवश्यकता है—

1. **उपयोगी विषयों एवं क्रियाओं का समावेश (Inclusion of useful Subjects and Activities)**—परम्परागत पाठ्यक्रम केवल सैद्धान्तिक और पुस्तकीय है। हमें चाहिए कि पाठ्यक्रम में जीवन से संबंधित सभी विषयों और क्रियाओं को स्थान दिया जाना चाहिए।

2. **पाठ्यक्रम के स्तर को ऊँचा उठाना (Upgrading the Curriculum)**—पाठ्यक्रम के निम्न स्तर को ऊँचा उठाने की अत्यधिक आवश्यकता है। इसके लिए विश्वविद्यालय के शिक्षा विभाग, प्रशिक्षण महाविद्यालय तथा राज्य शिक्षा संस्थानों को पाठ्यक्रम में सुधार लाने के लिए खोज व शोध कार्य करने चाहिए और खोजों के आधार पर पाठ्यक्रम में सुधार तथा उपलब्धि के स्तर को परिभाषित करना चाहिए।

3. **बच्चों की रुचि को ध्यान में रखना (Keeping the Interests of the Child in Mind)**–पाठ्यक्रम का चयन करते समय बच्चों की रुचि, रुझान, योग्यता एवं आवश्यकताओं का ध्यान अवश्य रखा जाए। पाठ्य-वस्तु का चयन करते समय बच्चों की मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक स्थिति सामने रखना चाहिए। नई शिक्षा नीति 1986 (New education policy) में भी बाल केन्द्रित शिक्षा का सुझाव दिया गया है तथा करके सीखने (Learning by doing) के सिद्धांत को अपनाने का भी सुझाव दिया गया है।

4. **हिन्दी के महत्व को पहचानना (Recognising the Importance of Hindi)**–यह खेद की बात है कि आज भी देश के कुछ भागों में राष्ट्र भाषा हिन्दी की उपेक्षा की जाती है, परंतु राष्ट्रीय एकता और राष्ट्र की भावनात्मक एकता के लिए हमें राष्ट्रीय भाषा का अध्ययन अनिवार्य रूप से करना चाहिए।

5. **बहुमुखी कार्यक्रम का आयोजन करना (Organising Diversified Courses)**–बच्चों की मनोवैज्ञानिक भिन्नता को ध्यान में रखते हुए बहुमुखी कार्यक्रम (Diversified Courses) का आयोजन करना आवश्यक है। हमारे विद्यालयों को चाहिए कि वे सभी वर्गों के बच्चों को विषयों के चुनाव का अधिक से अधिक अवसर प्रदान करें।

6. **पाठ्यक्रम में नवाचार (Innovations in Curriculum)**–सभी विद्यालयों को सामान्य तौर पर तथा प्रयोगात्मक विद्यालयों को विशेष तौर पर प्रोत्साहन देना चाहिए कि वे अपनी आवश्यकताओं व उपलब्ध साधनों के आधार पर पाठ्यक्रम का निर्माण कर सकें। विद्यालयों को ऐसा करने के लिए स्वतंत्रता देनी चाहिए ताकि वे शिक्षा निर्देशालय के आदेशों के प्रति लकीर के फकीर न बनें।

7. **स्वास्थ्य शिक्षा पर बल (Emphasis on Health Education)**–अब तक हमारी माध्यमिक शिक्षा प्रणाली में स्वास्थ्य शिक्षा पर अधिक बल नहीं दिया गया है। जिस देश के नागरिकों का स्वास्थ्य ठीक नहीं होता, वह देश किसी भी प्रकार से उन्नति नहीं कर सकता। स्वस्थ नागरिकों से ही देश की उन्नति तथा रक्षा की आशा की जा सकती है। अतः सभी बच्चों को स्वास्थ्य, रक्षा संबंधी नियमों एवं क्रियाओं का ज्ञान कराना चाहिए।

8. **विज्ञान एवं गणित की शिक्षा पर बल (Emphasis on Science and Mathematics Subjects)**–माध्यमिक शिक्षा आयोग ने सुझाव दिया है कि शिक्षा के प्रथम दस वर्षों में विज्ञान और गणित शिक्षा पर बल दिया जाए। साथ ही विज्ञान को तकनीकी से जोड़कर व्यावहारिक भी बनाया जाए।

9. **हस्तकार्य पर बल (Emphasis on Manual Work)**–माध्यमिक शिक्षा आयोग ने शिक्षा के सभी स्तरों पर हस्तकार्य को प्राथमिकता देने का सुझाव दिया। विभिन्न स्तर पर हस्तकार्य अलग-अलग अपनाए जाएं। हस्तकार्य का चयन करते समय छात्रों की क्षमता एवं रुचि को ध्यान में रखा जाए।

10. **तकनीकी तथा व्यावसायिक शिक्षा पर बल (Emphasis on Technical and Vocational Education)**–पाठ्यक्रम उपयोगी होना चाहिए। इसलिए इसमें तकनीकी तथा व्यावसायिक शिक्षा की पूरी-पूरी व्यवस्था की जानी चाहिए। पाठ्यक्रम की पाठ्य-वस्तु ऐसी होनी चाहिए, जिसे पूरा करने के पश्चात् बच्चे उत्पादन तथा उद्योग कार्य में प्राथमिक दक्षता प्राप्त कर लें और अपनी जीविका कमाने के योग्य बन जाएं।

11. **पाठ्यक्रम का बच्चों से संबंध तथा एकीकरण (Relation with the Students and Integration)**–जहां तक सम्भव हो, पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जिसका बच्चों से संबंध हो और जिसे बच्चे अपने अध्ययन के आधार पर ग्रहण कर सकें।

निष्कर्ष (Conclusion) : इस प्रकार से उपरोक्त वर्णित सुझावों का अनुसरण करके सामाजिक विज्ञान शिक्षण हेतु एक उपयुक्त पाठ्यक्रम का विकास किया जा सकता है। इन सुझावों की मुख्य बात निर्धारित शिक्षण उद्देश्यों की पूर्ति के परिप्रेक्ष्य में विषय संबंधी प्रकरणों, विषय-वस्तु तथा अधिगम अनुभवों का चयन और आयोजन की ही है।

सामाजिक विज्ञान पाठ्यक्रम आयोजन के संगठन के उपागम (Approaches to the Organisation of Social Science Curriculum)

Q. सामाजिक विज्ञान पाठ्यक्रम आयोजन के संगठन के विविध उपागमों की व्याख्या कीजिए। (Describe the various approaches to the organisation of social science curriculum.)

उत्तर : सामाजिक विज्ञान पाठ्यक्रम के निर्माण व नियोजन में विविध उपागमों का प्रयोग होता है। शिक्षण को सरल, स्पष्ट, उपयोगी व व्यावहारिक बनाने में इन उपागमों का प्रयोग बहुत उपयोगी माना जाता है। सामाजिक विज्ञान शिक्षण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण इन उपागमों का अध्ययन निम्न प्रकार से किया जा सकता है–

1. **केन्द्रीभूत या चक्राकार उपागम (Concentric or Spiral Approach) :** सामाजिक विज्ञान शिक्षण में इस उपागम का प्रयोग उस प्रकरण या उपविषय के लिए किया जाता है, जिसका आरम्भ एक विशेष कक्षा से होता है, परंतु अंत उसी कक्षा में होने की अपेक्षा अगली कक्षा में होता है। प्रकरण के कठिनाई स्तर को ध्यान में रखते हुए इसके शिक्षण में सरल से कठिन शिक्षण की प्रक्रिया को अपनाया जाता है। इसलिए उस प्रकरण को अगली कक्षा में समाप्त करने की बात कही जाती है। सामान्यतौर पर किसी विशेष स्तर (प्राथमिक व माध्यमिक) पर पढ़ाए जाने वाले प्रकरणों का चुनाव पहले कर लिया जाता है तथा उसके उपरांत इन प्रकरणों को बच्चों के मानसिक विकास तथा कक्षा के अनुसार बढ़ते कठिनाई स्तर के आधार पर उपयुक्त अंशों अथवा खंडों में विभाजित कर लिया जाता है। इस तरह के प्रकरण के अन्तर्गत सरल अंशों का अध्ययन प्राथमिक कक्षाओं में ही करवाया जाता है, अर्थात् इस स्तर पर प्रकरण की मात्र शुरुआत की जाती है। जैसे-जैसे बालक की समझ व कक्षा का स्तर बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे संबंधित प्रकरण का कठिनाई स्तर भी बढ़ता जाता है। ~~इस उपागम में प्रकरण विशेष की तार्किक वस्तु केन्द्र का कार्य करती~~ है। इस केन्द्र के इर्द-गिर्द ही प्रकरण को कठिनाई स्तर के अनुसार आगे बढ़ाया जाता है। इस प्रकार का शिक्षण नियोजन ज्यामिति की चक्राकार अर्थात् स्पाइरल (Spiral) आकृति जैसा होता है। घड़ी की कमानी (Spiral) की तरह प्रकरण की विषय-वस्तु केन्द्र बिन्दु से शुरू होकर अगली कक्षाओं में निम्न प्रकार से विस्तृत होती जाती है–

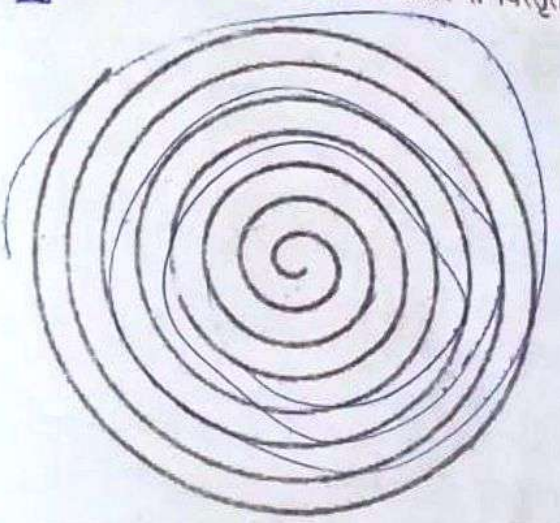

चित्र : केन्द्रीभूत अर्थात् चक्राकार संगठन को प्रदर्शित करता चित्र

पाठ्यक्रम निर्माण व नियोजन के इस उपागम के अन्तर्गत उदाहरण के लिए सामाजिक विज्ञान के 'सामाजिक परिवेश' नामक प्रकरण को लिया जा सकता है। इसके तहत शिक्षण की शुरुआत बहुत ही सरल तरीके से की जाती है, अर्थात् बालक के बहुत नजदीकी वातावरण (घर के आंगन) से होगी तथा धीरे-धीरे उसका दायरा बढ़ता हुआ पड़ोस, मुहल्ला, गांव, कस्बा, नगर, राज्य, देश व विश्व तक विस्तृत हो जाएगा।

2. **कालक्रम आधारित उपागम (Chronological Approach)** : पाठ्यक्रम निर्माण व विकास के इस उपागम के अन्तर्गत पाठ्य-वस्तु अथवा प्रकरण के कालक्रमानुसार व क्रमिक विकास सिद्धांत जाता है। सरल शब्दों में कहा जा सकता है कि जो विषय-वस्तु पहले व बाद में पढ़ाई जानी है, उसे व क्रमिक विकास का रूप प्रदान किया जाए। उदाहरण के लिए—सामाजिक विज्ञान विषय में मानव के अध्ययन से पहले पृथ्वी की उत्पत्ति नामक प्रकरण को पहले पढ़ाया जाएगा। कालक्रमानुसार व विकास सिद्धांत का अनुसरण करते हुए शिक्षण स्तर के अनुसार बालक को इसके बाद क्रमिक रूप से पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति, विस्तार व स्थानांतरण आदि प्रकरणों का अध्ययन करवाया जाएगा। अगले स्तर पर आदिमानव की जीवन शैली, समाज व सभ्यता का विकास आदि के प्रकरणों का अध्ययन करवाया जाएगा। ऐतिहासिक विषयों के प्रकरण के संगठन में तो इसकी विशेष भूमिका होती है, क्योंकि कालक्रमानुसार अध्ययन के बिना ऐतिहासिक घटनाओं व विविध पहलुओं को समझना कठिन होता है। इसी तरह राज्य विज्ञान स्थानीय भौगोलिक स्थिति को भी कालक्रमानुसार भूगोल के पाठ्यक्रम में स्थान दिया जाना चाहिए। सामाजिक विज्ञान से जुड़ी विषय-सामग्री को उसके क्रमिक विकास, क्रमिक उपयोग तथा क्रमिक पारस्परिक संबंधों की नजर से नियोजित करना सभी तरह से सही रहता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी बालक को किसी देश की प्रशासनिक व्यवस्था से अवगत करवाना है तो उसे पहले स्थानीय स्वशासन, उसके बाद प्रांतीय शासन तथा अंत में केन्द्रीय प्रशासन की जानकारी प्रदान की जानी चाहिए। इसी तरह न्याय प्रणाली का अध्ययन करते समय पहले पंचायतों, फिर तहसील व जिला स्तर की कचहरियां, फिर उच्च न्यायालय तथा सर्वोच्च न्यायालय की जानकारी प्रदान की जानी चाहिए। उपरोक्त विविध प्रकरणों के उदाहरणों से स्पष्ट है कि पाठ्यक्रम का निर्माण व संगठन का आधारभूत उपागम कालक्रम का सिद्धांत ही है। सामाजिक विज्ञान के इस उपागम में हमेशा कालक्रम उल्लेख, क्रमिक विकास व क्रमिक उपयोग के सिद्धांत को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। पाठ्यक्रम में कालक्रम आधारित पाठ्यक्रम के नियोजन को सामाजिक विज्ञान में 'न्याय प्रणाली' नामक प्रकरण को उदाहरण स्वरूप निम्न प्रकार से समझा जा सकता है—

चित्र : कालक्रम आधारित उपागम को प्रदर्शित करता चित्र

उपविषय या प्रकरण के अध्ययन में कालक्रमानुसार उपागम की उपयोगिता को उपरोक्त चित्र के माध्यम से सरलता से समझा जा सकता है। प्रकरण में क्रमिक विकास का सिद्धांत ही वास्तव में कालक्रमानुसार उपागम की आधारशिला है।

3. **इकाई उपागम (Unit Approach)** : पाठ्यक्रम के निर्माण, नियोजन व संगठन में इकाई

उपागम की उपयोगिता भी कम नहीं है। विज्ञान विषयों के साथ सामाजिक विज्ञान विषय में भी इसका उपयोगी प्रयोग किया जा सकता है। इसमें बच्चों की योग्यता एवं सक्रियता पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। इसके अनुसार विषय को पूर्ण इकाई मानकर उसकी विषय-सामग्री को विभिन्न उप-इकाइयों में विभाजित कर दिया जाता है। इस मनोविज्ञान के अनुसार छात्रों का ध्यान सबसे पहले पूर्णता की ओर जाता है, अंगों की ओर नहीं। आरम्भ में हम किसी भी वस्तु की आकृति को देखते हैं, तो हमारी नजर सबसे पहले उसकी पूरी आकृति पर जाती है, उसके बाद हम उसके विभिन्न छोटे-छोटे भागों का अध्ययन करते हैं। इन छोटे-छोटे अंगों या भागों के आधार पर पाठ्यक्रम तैयार करने के सिद्धांत को इकाई उपागम के नाम से जाना जाता है। पाठ्यक्रम संगठन में इकाई अनुभव शिक्षण विषय पर **किलैन एवं हेन्ना** ने कहा है, **"इकाई का बोध उस सामग्री से होता है, जो किसी सामान्य सिद्धांत प्रक्रिया, संस्कृति अथवा जीवनायापन के किसी क्षेत्र के चारों ओर संगठित की गई हो और जो महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों की दिशा में निर्देशित होकर अधिगम अनुभवों को एकता के सूत्र में पिरोती हो।"** इस उपागम में इकाई की रचना बच्चों की रुचियों, परिस्थितियों और आवश्यकताओं को मध्य नजर रखकर की जाती है। इस प्रकार की योजना का मुख्य उद्देश्य बच्चों को पाठ्य-सामग्री में दक्षता प्रदान करना है। प्रकरण विशेष में दक्षता हासिल करने के लिए ही इसे इकाइयों में बांटा जाता है। इकाई की समाप्ति के लिए कोई समय निश्चित नहीं होता। सामाजिक विज्ञान के पाठ्यक्रम में आवागमन के साधन, संचार-साधन, पृथ्वी पर जीवन, हमारा सौरमण्डल, स्वास्थ्य, भोजन, राष्ट्रीय एकता, न्याय प्रणाली, समाज की रचना, वन-संपदा, राष्ट्रीय विरासत, लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था, पड़ोसी देश व विश्व की समझ जैसी कुछ इकाइयों के नाम उदाहरण स्वरूप दिए जा सकते हैं।

4. **सह-संबंध उपागम (Correlation Approach) :** पाठ्यक्रम के इस उपागम के अनुसार पाठ्यक्रम इस प्रकार गठित किया जाना चाहिए कि वह व्यक्ति की आंतरिक पूर्णता में सहायक सिद्ध हो और व्यक्ति तथा वातावरण में अनुकूलन स्थापित करे। पाठ्यक्रम का निर्माण व नियोजन करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि सामाजिक विज्ञान विषय की पाठ्य-सामग्री को किसी एक स्तर या कक्षा विशेष के लिए नियोजित किया जाए तो वह अच्छी तरह से सह-संबंधित व समन्वित नजर आए। सामाजिक विज्ञान पाठ्यक्रम में इस सह-संबंध उपागम की सबसे ज्यादा जरूरत होती है क्योंकि सामाजिक विज्ञान शिक्षण का मुख्य आधार ही समन्वय का सिद्धांत है। सामाजिक विज्ञान का जीवन, अन्य उप-विषयों का पारस्परिक सह-संबंध और अंतःनिर्भरता, अनुभवों जैसे शिक्षण कार्यों के साथ गहरा व घनिष्ठ संबंध होना है। इसलिए सामाजिक विज्ञान पाठ्यक्रम निर्माण व नियोजन में सह-संबंध उपागम काफी महत्त्वपूर्ण होता है। अतः उत्तम सीखने के लिए यह आवश्यक है कि माध्यमिक स्तर के लिए पाठ्यक्रम तैयार करते समय उसमें उन्हीं विषयों और क्रियाओं का स्थान दिया जाए, जिनमें आपस में संबंध हो।

5. **तर्क-संगत अथवा वैज्ञानिक उपागम (Logical Approach) :** वर्तमान युग में विज्ञान की महत्ता सर्वोपरि है। विज्ञान आज सभ्यता एवं संस्कृति का पर्याय बन चुका है। शिक्षा के क्षेत्र में भी इसकी महत्ता को आसानी से समझा जा सकता है। अधिकांश शिक्षाशास्त्रियों ने पाठ्यक्रम के निर्माण, संगठन व नियोजन में विज्ञान एवं तकनीकी विषयों के समावेश पर बल दिया है, ताकि बालक, समाज को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समझ सके। **'पाठ्यक्रम में वैज्ञानिक विषयों के समावेश पर बल दिया जाए'** इस विचार के प्रमुख प्रतिपादक हरबर्ट स्पेंसर हैं। उन्होंने माना है कि शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य पूर्ण जीवन की तैयारी है और इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने पाठ्यक्रम में वैज्ञानिक विषयों को सम्मिलित किए जाने पर बल दिया है। इसे **'तर्क-संगत अथवा वैज्ञानिक उपागम'** का नाम दिया जाता है। शिक्षाशास्त्र का भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान और जीव विज्ञान से गहरा संबंध है तथापि यह भौतिक विज्ञान व रसायन विज्ञान से कम तथा जीव विज्ञान से विशेष रूप से संबंधित है। विज्ञान बालकों में चिंतन की प्रकृति एवं तर्कशीलता को बढ़ाने पर बल देता है। विज्ञान ही शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त समस्याओं का वैज्ञानिक ढंग से समाधान करता है। विज्ञान ही शिक्षा जगत के सिद्धांतों के प्रतिपादन के लिए आधार प्रस्तुत करता है। इसलिए कहा जा सकता है कि पाठ्यक्रम के

निर्माण तथा नियोजन में इस उपागम की उपयोगिता को समझा जाना चाहिए। जहां तक सामाजिक विज्ञान विषय के पाठ्यक्रम से इसके संबंध का प्रश्न है, तो इस विषय में यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि मानव के व्यवहारगत परिवर्तनों को समझने में यह हमारी काफी सहायता करता है। सामाजिक विज्ञान विषय-वस्तु का संबंध प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से विज्ञान से ही होता है। सामाजिक विज्ञान शिक्षण के तहत बालक को तर्कशील, चिंतनशील, सतर्क, एवं सृजनात्मक बनाना होता है, जिसकी प्राप्ति में पाठ्यक्रम निर्माण का यह तर्क-संगत उपागम हमारी काफी सहायता करता है। इसके माध्यम से बालक समाज में होने वाले सामाजिक परिवर्तनों को तार्किक रूप से समझने में सक्षम होंगे। वर्तमान समय में सामाजिक विज्ञान के साथ वैज्ञानिक विषयों की सहःसंबंधता की आवश्यकता इतनी ज्यादा हो गई है कि भारत सरकार द्वारा नियुक्त लगभग सभी आयोगों ने सामाजिक विज्ञान तथा विज्ञान की समन्वयता पर आधारित पाठ्यक्रम बनाने की बात पर विशेष रूप से बल दिया है।

निष्कर्ष (Conclusion) : उपरोक्त अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि पाठ्यक्रम के उपरोक्त सभी उपागम अपनी-अपनी दृष्टि से पाठ्यक्रम को उपयोगी बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। सामाजिक विज्ञान में इन उपागमों का प्रयोग बालक के ज्ञान स्तर तथा परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न तरीके से किया जा सकता है। पाठ्यक्रम निर्माताओं में इन उपागमों की सैद्धांतिक समझ होना भी बहुत जरूरी है, ताकि आवश्यकता व परिस्थिति के अनुसार वह निर्णय ले सकें कि किस परिस्थिति में कौन-सा उपागम अधिक उपयोगी होगा। सामाजिक विज्ञान विषय की प्रकृति को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि इस विषय के पाठ्यक्रम निर्माण में मिश्रित प्रक्रिया (विभिन्न उपागमों का मिश्रित प्रयोग) को अपनाना बेहतर होगा।

पाठ्यक्रम के सोपान
(Steps of Curriculum)

❑ **पाठ्यक्रम (विकास) निर्माण के विभिन्न (चरणों) सोपानों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।**
(What are the steps of Curriculum Development? Explain in short answer)

उत्तर : पाठ्यक्रम विद्यालय के सभी शैक्षणिक विषयों और सहगामी क्रियाओं का मूल आधार होता है। अर्थात् प्रत्येक कक्षा के सभी विषयों, विषय से संबंधित और अन्य विद्यालय में और विद्यालय से बाहर की सभी सहगामी क्रियाओं का समायोजन ही पाठ्यक्रम होता है।

फिलिप एच. टेलर के अनुसार, "पाठ्यक्रम के अन्तर्गत, पाठ्यवस्तु, शिक्षण, शिक्षण विधियों तथा उद्देश्यों को सम्मिलित किया जाता है। इन क्रियाओं को कैसे आरम्भ किया जाये, इन तीनों पक्षों (पाठ्यवस्तु + शिक्षण + शिक्षण विधियां) और उनका मूल्यांकन, सभी क्रियाओं के समायोजन को पाठ्यक्रम कहते हैं।"

पाठ्यक्रम विकास प्रक्रिया को मुख्य रूप से निम्नलिखित भागों में विभाजित किया गया है–

(1) शिक्षा के उद्देश्यों का चयन करना।
(2) अधिगम अनुभवों का चयन एवं शिक्षण विधियों का चुनाव
(3) विषयवस्तु एवं सहभागी क्रियाओं का चयन
(4) विषयवस्तु का संगठन एवं एकीकरण
(5) मूल्यांकन

पाठ्यक्रम विकास निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है जो यह कभी भी समाप्त नहीं होती है। पाठ्यक्रम को अन्तिम रूप देने के उपरान्त भी, किसी भी प्रकार की समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं अर्थात् कभी भी किन्हीं कारणों से पाठ्यक्रम में परिवर्तन अथवा संशोधन की आवश्यकता अनिवार्य हो जाती है। कुछ समय पूर्व कम्प्यूटर शिक्षा पर कोई ध्यान नहीं दिया गया था, परन्तु अब कम्प्यूटर शिक्षा अनिवार्य हो गई है। तीव्रगति से परिवर्तनशील जीवन में, समय के अनुसार आवश्यकताएं, आकांक्षाएं, जीवन शैलियों में निरन्तर व तीव्र गति

के परिवर्तन हो रहा है। उदाहरण के लिए, पहले विश्व में टेलीफोन और टेलीविजन व्यवस्था नहीं थी। परन्तु अब 21वीं शताब्दी में मोबाइल व्यवस्था इतनी प्रचलित हो गई है कि समाज में इसने क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया है। समाज को कुशलता, समाचार, नई जानकारी के लिए, विचारों के आदान-प्रदान के लिए अब यात्रा की कोई आवश्यकता नहीं है। घर बैठे कुशलता समाचार, विचारों का आदान-प्रदान एवं विचार-विमर्श मिनटों में संपन्न हो जाते हैं।

मोबाइल के उपयोग के कारण प्रेम-विवाह, अन्तर्जातीय विवाह, एक गोत्र, एक ही गांव में प्रेम विवाह से सामाजिक भाई-चारा, सामाजिक व्यवस्था को तार-तार (समाप्त) कर दिया है। प्रेमी जोड़ों की हत्याएं की जा रही हैं व कुछ स्वयं ही आत्महत्या कर रहे हैं। सरकार ने विवश होकर ऐसी हत्याओं, दुर्घटनाओं को रोकने के लिए प्रत्येक जिले में प्रेमी जोड़ों को आश्रय (सुरक्षा) देने की व्यवस्था की है। इसका प्रभाव समाज की आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक शिक्षा एवं सामाजिक बन्धनों एवं अनुशासन पर पड़ रहा है। इसका प्रभाव पाठ्यक्रम में परिवर्तन व संशोधन पर पड़ना स्वाभाविक एवं अनिवार्य है। जीवन की परिवर्तनशील परिस्थितियों में पाठ्यक्रम में परिवर्तन करना व संशोधन करना अनिवार्य होता है। इसलिए पाठ्यक्रम निरन्तर परिवर्तनशील व विकासशील है, जिसे वातावरण, परिस्थितियों, आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के अनुरूप संशोधित करते रहना चाहिए।

पाठ्यक्रम विकास के (चरण) सोपान
(Steps of Curriculum Development)

प्रथम चरण–समाज, समुदाय और राष्ट्र की परिस्थितियों, वातावरण और आवश्यकताओं, आकांक्षाओं की खोज करना, पाठ्यक्रम विकास का प्रथम चरण है।

द्वितीय चरण–समाज के लिए उपयुक्त शैक्षिक उद्देश्य एवं लक्ष्यों अध्ययन एवं निर्धारण करना, जिसमें समाज के सामान्य और विशिष्ट, अल्पकालीन और दीर्घकालीन उद्देश्यों का चयन करना और उद्देश्यों की पूर्ति हेतु पाठ्यक्रम में समायोजन के लिए व्यवस्था एवं समाधान करना।

तृतीय चरण–पाठ्यक्रम के तृतीय चरण में उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए जीवन के अनुभवों को सूचीबद्ध करके तथा अधिगम अनुभवों को विद्यार्थियों के लिए प्रयोग किया जाता है। अधिगम अनुभवों का चयन एवं संगठन पाठ्यक्रम विकास में महत्वपूर्ण सोपान है।

चतुर्थ चरण–मानवीय संसाधनों के साथ-साथ भौतिक संसाधनों की पहचान करना, शिक्षक के लिए आवश्यक होता है। शिक्षण विधियां और प्रबन्ध पाठ्यक्रम निर्माण के लिए सर्वाधिक आवश्यक चरण है।

पंचम सोपान चरण–विद्यार्थियों की शिक्षण सुविधा के लिए और उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए, अनुभवों के आधार पर नीतियों का निर्धारण किया जाता है।

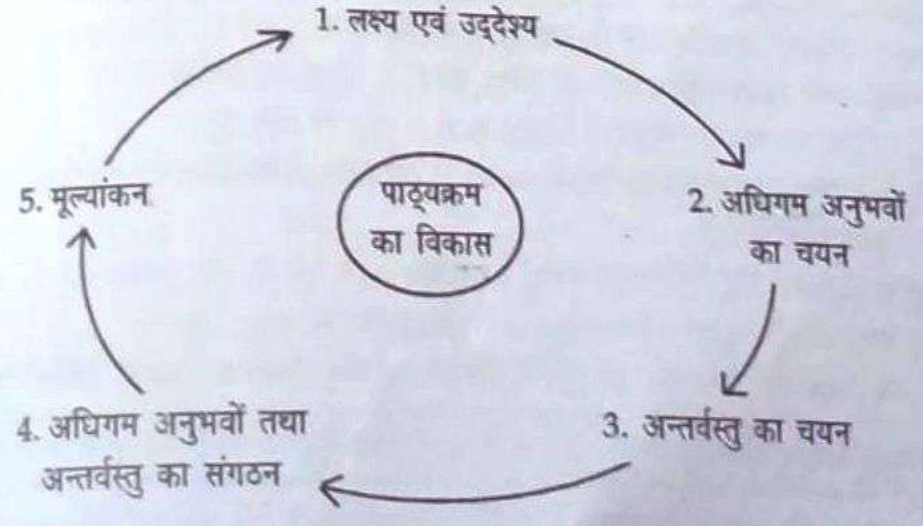

पाठ्यक्रम विकास के चरण (सोपान)

पाठ्यक्रम के निर्माण में प्रत्येक चरण (सोपान) का गहन अध्ययन करके, सिद्धान्तों के आधार पर पाठ्यक्रम का पुनः अध्ययन, पुनर्विचार, पुनः निरीक्षण और निरन्तर संशोधन करना आवश्यक होता है, क्योंकि सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और प्राकृतिक परिवर्तनों एवं परिस्थितियों का पाठ्यक्रम पर भी सीधा प्रभाव पड़ता है। इसलिए पाठ्यक्रम निरन्तर परिवर्तनशील और व्यापक होता है।

लघु उत्तरीय प्रश्न
(Short Answer Type Questions)

❑ 'पाठ्यक्रम' शब्द का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

उत्तर : पाठ्यक्रम (curriculum) शब्द की उत्पत्ति लैटिन शब्द क्यूर (Currere) से हुई, जिसका अर्थ है—दौड़ (Run)। इस प्रकार पाठ्यक्रम का अर्थ, "किसी निश्चित लक्ष्य अथवा उद्देश्य तक पहुंचने के लिए एक दौड़ का मार्ग।" अर्थात् curriculum एक वह रास्ता है, जिस पर चलकर मनुष्य अपनी मंजिल तक पहुंचता है। पाठ्यक्रम की पुरानी धारणा के अनुसार पाठ्यक्रम को केवल पाठ्यवस्तु का पर्यायवाची माना जाता था। यदि पाठ्यक्रम की आधुनिक धारणा को देखें तो यह अर्थ बड़ा ही संकुचित एवं भौतिक प्रकृति का प्रतीक होता है। **कनिंघम के अनुसार, "पाठ्यक्रम कलाकार (अध्यापक) के हाथ में एक साधन है, जिसमें वह अपने स्टूडियो (स्कूल) में अपनी सामग्री (छात्रों) को अपने आदर्श (लक्ष्यों एवं उद्देश्यों) के अनुसार ढालता है।"**

❑ अध्ययनक्रम तथा पाठ्यक्रम में अंतर स्पष्ट कीजिए।

उत्तर : अध्ययनक्रम तथा पाठ्यक्रम में अंतर को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है—

(i) अध्ययनक्रम का क्षेत्र संकुचित है, जबकि पाठ्यक्रम का क्षेत्र विस्तृत है।

(ii) पाठ्यक्रम बालक के जीवन के सभी पहलुओं को स्पर्श करता है, जबकि अध्ययन क्रम केवल इतना देखता है कि भिन्न-भिन्न विषयों में ज्ञान की कितनी मात्रा प्रदान करती है।

(iii) अध्ययनक्रम बालक का केवल मानसिक विकास कर सकता है, जबकि पाठ्यक्रम बालक के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करने पर बल देता है।

(iv) अध्ययनक्रम में बालकों को रटने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है, जबकि पाठ्यक्रम में समझने पर।

(v) पाठ्यक्रम बालकों के व्यवहार में भी उचित परिवर्तन लाता है, जबकि अध्ययन क्रम में ऐसा नहीं।

❑ शैक्षिक प्रक्रिया में पाठ्यक्रम की आवश्यकता तथा महत्त्व को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर : पाठ्यक्रम एक आधार है, जिसकी सहायता लेकर शिक्षा के उद्देश्य प्राप्त किए जा सकते हैं। पाठ्यक्रम की आवश्यकता तथा महत्त्व को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है—

(i) शिक्षण सामग्री का निर्धारण पाठ्यक्रम के अनुरूप ही होता है।

(ii) पाठ्यक्रम एक साधन है, जिसके माध्यम से हम शिक्षा के निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं।

(iii) पाठ्यक्रम विभिन्न शिक्षण-विधियों को प्रयोग करने का भी एक साधन है।

(iv) पाठ्यक्रम शिक्षा की विभिन्न प्रवृत्तियों और दर्शन को दर्शाता है।

(v) पाठ्यक्रम ही शिक्षा की वह धुरी है, जिसके इर्द-गिर्द शिक्षा की समस्त प्रक्रिया घूमती है।

❑ सामाजिक विज्ञान के पाठ्यक्रम निर्माण के लिए चयनित पाठ्य-सामग्री की सूची बनाइये।

उत्तर : सामाजिक विज्ञान के पाठ्यक्रम में निम्न पाठ्य-सामग्री को शामिल किया जा सकता है—

9 शिक्षण अधिगम सामग्री (Teaching Learning Material)

परिचय
(Introduction)

कक्षा-शिक्षण के दौरान कई बार ऐसा होता है कि विषय-वस्तु से संबंधित पाठ के नवीन, सूक्ष्म, महत्त्वपूर्ण तथ्यों एवं कठिन अंशों (प्रकरण) को मौखिक वाचन अथवा उदाहरणों द्वारा स्पष्ट नहीं किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में पाठ को सरल, रोचक तथा मनोरंजक बनाने के लिए शिक्षक को शिक्षण के अन्य उपकरणों का सहारा लेना पड़ता है। इस उद्देश्य के लिए प्रयोग किए जाने वाले साधनों को **'शिक्षण अधिगम सामग्री'** कहा जाता है। तार्किक दृष्टि से इस तरह की सामग्री को **'श्रव्य-दृश्य सामग्री'** (Audio-Visual Aids) के रूप में परिभाषित किया जाता है। इसका संबंध देखने व सुनने से होता है, जिनसे ज्ञानेन्द्रियां प्रभावित होती हैं। दृश्य-श्रव्य वे साधन हैं जो वस्तु विशेष की पूर्ण रूप से स्पष्ट धारणा बनाने में बालक की सहायता करते हैं। किसी भी वस्तु की वास्तविक अनुभूति प्रदान करना, जैसे—संतरे या सेब को देखकर, छूकर, सूंघकर व प्रत्यक्ष रूप से चखकर बालक उसे अच्छी तरह से समझ सकते हैं। यह ठोस वस्तुओं का वह समूह है जिसे देखकर, उसकी ध्वनि सुनकर, छूकर, चखकर एवं टटोलकर छात्र नया अनुभव प्राप्त करते हैं और अपने मस्तिष्क में सीखने की प्रक्रिया के स्वरूप को अंकित कर लेते हैं। **जोसेफ बेबर** के अनुसार, **"विभिन्न वस्तुओं के बारे में हमारी 40 प्रतिशत अवधारणा दृश्य-अनुभवों, 25 प्रतिशत श्रव्य, 17 प्रतिशत स्पर्श, 15 प्रतिशत अन्य विभिन्न शारीरिक अनुभवों तथा 3 प्रतिशत स्वाद व सुगन्ध पर आधारित होती है।"** छात्रों को स्पष्ट ज्ञान देने के लिए ऐसी सामग्री का प्रयोग करना चाहिए, जिसे बालक देख, सुन, छू, चख व सूंघकर अपनी इन्द्रियों का प्रयोग कर सकें। इन्द्रियां ज्ञान प्राप्ति का प्रवेश द्वार मानी जाती हैं। इसलिए शिक्षण अधिगम सामग्री के रूप में दृश्य-श्रव्य साधनों की अपनी विशेष उपयोगिता होती है। इस अध्याय के अन्तर्गत हम शिक्षण अधिगम सामग्री (दृश्य-श्रव्य) के विविध पहलुओं का अध्ययन निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत करेंगे—

- **सामग्री का अर्थ, परिभाषा, महत्त्व व सुझाव**
- **शिक्षण अधिगम सामग्री का वर्गीकरण**
- **सामाजिक विज्ञान में प्रयुक्त कुछ महत्त्वपूर्ण शिक्षण अधिगम सामग्री जैसे—पाठ्य-पुस्तकें एवं संदर्भ पुस्तकें/डॉक्यूमेन्टरीज, समाचार-पत्र, मानचित्र, सामुदायिक संसाधन, मानचित्रावली व ई. संसाधन।**

शिक्षण अधिगम सामग्री का अर्थ, परिभाषा, महत्त्व व सुझाव
(Meaning, Definition, Importance and Suggestions of Teaching Learning Material)

❑ **शिक्षण अधिगम सामग्री (श्रव्य-दृश्य) के अर्थ, परिभाषा, महत्त्व व सुझाव पर एक शैक्षिक टिप्पणी कीजिए।**

[Write a educational note on the meaning, definition, importance and suggestions of teaching learning material (Audio-Visual)].

उत्तर : वर्तमान समय में स्थाई स्मृति के लिए शिक्षा का सीधा संबंध हृदय व मस्तिष्क से होना चाहिए, ...के लिए कुछ ऐसी सामग्री का प्रयोग किया जा रहा है, जिसका संबंध देखने व सुनने से होता है, जिससे ...न्द्रियां प्रभावित होती हैं। इस तरह के श्रव्य-दृश्य साधन शिक्षण अधिगम सामग्री के अन्तर्गत आते हैं। ...तरह के साधनों का मुख्य उद्देश्य है कि अध्यापक सुगमता और प्रभावपूर्ण ढंग से पढ़ा सके तथा बालक ...सरलतापूर्वक उन्हें सही प्रकार से समझकर प्राप्त ज्ञान का उचित उपयोग कर सकें।

श्रव्य-दृश्य सामग्री का अर्थ
(Meaning of Audio-Visual Aids)

श्रव्य-दृश्य सामग्री का तात्पर्य शिक्षण के उन साधनों से है, जिनके प्रयोग से बालकों की श्रव्य-दृश्य की ज्ञानेन्द्रियां सक्रिय हो जाती हैं और वे पाठ के सूक्ष्म से सूक्ष्म तथा कठिन से कठिन प्रकरणों को सरलतापूर्वक ...tksg ft1 le; f'k{kd smis; i{kr djusdsfy, fofHkUu fof/k;k(Methods) तथा प्रविधियाँ (Techniques) असफल होती दिखाई देने लगती हैं तो ऐसी स्थिति में श्रव्य-दृश्य सामग्री का ही प्रयोग किया जाता है। इस दृष्टि से श्रव्य-दृश्य सामग्री न केवल शिक्षण को ही अपितु शिक्षण की प्रविधियों अथवा युक्तियों को भी प्रभावशाली बनाने में राम-बाण का कार्य करती है।

एक प्राचीन कहावत है कि, "एक बार देखना सौ बार बताने से अच्छा है"। सम्भव है कि यह बात अक्षरशः सत्य न हो, किन्तु इसमें सत्य की बड़ी मात्रा पाई जाती है। वर्तमान शिक्षण-पद्धति में तो इस बात को अनुभव भी कर लिया गया है। यदि हम प्रभावपूर्ण ढंग से सामाजिक विज्ञान पढ़ाना चाहते हैं तो हमें विभिन्न प्रकार की दृश्य-श्रव्य सामग्री का प्रयोग करना होगा, जिसे विद्यार्थी देख, सुन, छू, चख व सूंघ सकें या फिर जिस पर सोच-विचार कर सकें, क्योंकि इन्द्रियाँ ज्ञान प्राप्ति का प्रवेश द्वार मानी जाती हैं, अतः आवश्यक हो जाता है कि हम अपने विद्यार्थियों को श्रेणी के अन्दर तथा बाहर अनेक प्रकार के ऐसे अनुभव प्रदान करें जिनका सीधा सम्बन्ध उनकी इन्द्रियों से हो। किन्तु ध्यान रखने वाली बात तो यह है कि बालक एक समय में एक ही इन्द्रिय से ज्ञान प्राप्त नहीं करते, अपितु विभिन्न साधनों से प्रेरित होकर जब प्रत्युत्तर में वे अनेक इन्द्रियों का प्रयोग करते हैं, तो उन्हें सरलतापूर्वक नवीन ज्ञान की उपलब्धि होती है।

इसके अर्थ को **परिभाषित करने** के लिए निम्न शिक्षाशास्त्रियों के कथनों का सहारा लिया जा सकता है, जो इस प्रकार हैं–

अरस्तु के अनुसार, "आंखों द्वारा दृश्य वस्तु मस्तिष्क की चेतनाओं पर अमिट प्रभाव डालती है। इसका सार यह है कि आंख मस्तिष्क का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रदेश द्वार है। अधिकतर लोगों के लिए दृश्य प्रभाव दीर्घ व स्थाई होता है और आसानी से समझ को चेतना प्रदान करता है।"

डैन्ट के अनुसार, "दृश्य-श्रव्य सामग्री वह है, जो कक्षा में या अन्य शिक्षण परिस्थितियों में लिखित या बोली गई पाठ्य-सामग्री को समझने में सहायता करती है।"

शिक्षा परिभाषाकोश के अनुसार, "सीखने की क्रिया में सहायक देखने और सुनने के साधन, जैसे—मानचित्र, एटलस, समाचार-पत्र, डॉक्यूमेन्टरीज, पाठ्य-पुस्तकें एवं संदर्भ पुस्तकें व ई.संसाधन आदि को दृश्य-श्रव्य अर्थात् शिक्षण अधिगम सामग्री के अन्तर्गत रख सकते हैं।"

क्रो एवं क्रो के अनुसार, "श्रव्य-दृश्य उपकरण सीखने वालों को व्यक्तियों, घटनाओं, वस्तुओं तथा कारण और प्रभाव संबंधों के नियोजित अनुभवों से लाभ उठाने का अवसर प्रदान करते हैं।"

विटिच तथा शूलर के अनुसार, "श्रव्य-दृश्य विधियां और वस्तुएं भावपूर्ण सीखने, प्रबल छात्र-रुचि और उत्साह तथा विद्यालय में सफलता के लिए अति लाभदायक आधार है।"

महत्त्व
(Importance)

दृश्य-श्रव्य साधन अनुभव प्रदान करते हैं। इनके प्रयोग से बालकों का मनोरंजन होता है और

कल्पना-शक्ति व निरीक्षण शक्ति का भी विकास होता है। इसके प्रयोग से बच्चे पाठ में विशेष रुचि लेकर उसे अधिक समय तक याद रखकर परीक्षा में अधिक अंक प्राप्त कर सकते हैं। छोटे बालकों की शिक्षा में तो इसके महत्त्व को प्रत्येक शिक्षाशास्त्री ने एकमत होकर स्वीकार किया है। दृश्य-श्रव्य अर्थात् शिक्षण अधिगम सामग्री के महत्त्व को निम्नलिखित प्रकार से समझा जा सकता है–

1. प्रेरणा प्रदान करना (Provides Motivation)–शिक्षण अधिगम साधन बालकों का ध्यान आकर्षित करते हैं तथा ज्ञान को स्थूल रूप (Concrete form) में प्रस्तुत करते हैं। इससे बालकों को सीखने की क्रिया में प्रेरणा तथा उत्सुकता मिलती है। दूसरे शब्दों में, दैनिक शिक्षण विधि की अपेक्षा शिक्षण अधिगम सामग्री द्वारा पढ़ाने से बालक पाठ को ध्यानपूर्वक सुनते हैं और सुगमता से शीघ्र सीख जाते हैं। इस प्रकार ये बालकों का ध्यान केन्द्रित करने तथा उनकी रुचियों को जाग्रत करने में अच्छा साधन हो सकते हैं। इनसे बालकों को शीघ्र अति शीघ्र सीखने, देर तक याद रखने, ठीक-ठीक बातें ग्रहण करने तथा गूढ़ अर्थ व अवधारणाओं को समझने में सहायता मिलती है। क्योंकि ये सहायक साधन बालकों की तात्कालिक जिज्ञासा को शान्त करते हैं, अतः उन्हें आगे अध्ययन करने की प्रेरणा देते हैं।

2. क्रिया का सिद्धान्त (Principle of Activity)–शिक्षण अधिगम साधनों के प्रयोग से बालकों को नाना प्रकार की क्रियाएं करने के अवसर मिलते हैं। वे उसमें बोलते-चलते हैं, प्रश्न पूछते हैं तथा वाद-विवाद करते हैं। इससे उनकी अनेक इन्द्रियाँ उत्तेजित हो जाती हैं, जिनके परिणामस्वरूप उनकी पाठ में रुचि बनी रहती है और वे खेलते ही खेलते कठिन से कठिन बातों को बिना किसी कठिनाई के स्वाभाविक रूप से सीख जाते हैं।

3. स्पष्टीकरण (Clarification)–शिक्षण अधिगम सामग्री के प्रयोग से बालक को कठिन से कठिन पाठ्य-सामग्री का स्पष्टीकरण हो जाता है। इसका एकमात्र कारण यह है कि बालक जो कुछ सुनते हैं, उसी को आँख से भी देखते हैं। आँख से देख लेने पर उनकी समस्त शंकाएँ दूर हो जाती हैं, जिनके परिणामस्वरूप वे ज्ञान को स्पष्ट रूप से ग्रहण कर लेते हैं।

4. अर्थयुक्त अनुभव (Meaningful Experience)–शिक्षण अधिगम सामग्री द्वारा बालकों को पाठ स्थूल रूप से पढ़ाया जाता है। प्रत्येक बालक वस्तु को देखकर, छूकर तथा पूछकर हर प्रकार से ठीक-ठाक समझने का प्रयत्न करता है। इससे पाठ सरल, रोचक तथा मनोरंजक बन जाता है और सभी बालक ज्ञान को प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण कर लेते हैं। दूसरे शब्दों में, "श्रव्य-दृश्य सामग्री के प्रयोग से बालकों के अनुभव अर्थयुक्त हो जाते हैं। इससे कक्षा में मौलिक चिन्तन को प्रोत्साहन मिलता है।"

5. रटने को कम करना (Discouragement to Cramming)–शिक्षण अधिगम सामग्री के प्रयोग से बालक पाठ के विकास में रुचि लेते हैं तथा ज्ञान को स्वयं क्रिया करके ग्रहण करते हैं। इससे सीखा हुआ ज्ञान निश्चित तथा स्थायी बन जाता है और उन्हें किसी चीज को रटने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

6. शब्दावली में वृद्धि (Increase in Vocabulary)–शिक्षण अधिगम सामग्री के द्वारा बालकों की शब्दावली में वृद्धि होती है। इसका कारण यह है कि वे मानचित्र, समाचार-पत्र, एटलस आदि का प्रयोग करते समय नये-नये शब्द सुनते हैं तथा ग्रहण करते हैं।

7. शिक्षण में कुशलता (Efficiency in Teaching)–श्रव्य-दृश्य सामग्री का प्रयोग करने से शिक्षण में कुशलता आती है। साथ ही शिक्षण और अधिक प्रभावशाली बन जाता है। दूसरे शब्दों में, जिन सूक्ष्म बातें तथा कठिन भावों को बालक 'चाक और टाक' (Chalk and Talk) की सहायता से नहीं समझ सकते, उन्हें वे शिक्षण अधिगम सामग्री के प्रयोग से सफलतापूर्वक समझ जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि श्रव्य-दृश्य सामग्री के प्रयोग से शुष्क से शुष्क (Most dry) तथा अरुचिकर विषयों तथा उपविषयों को अन्य प्रविधियों की अपेक्षा अधिक सरल, रोचक तथा स्पष्ट बनाया जा सकता है।

8. विभिन्न इन्द्रियों से सम्बन्धित अनुभवों की प्राप्ति (Provision of Sensory Experiences)–अधिगम करने के लिए यह आवश्यक है कि बालकों को पर्याप्त इन्द्रियानुभव प्राप्त हों। नये शब्दों तथ

अपरिचित बातों को उस समय तक भली प्रकार समझा नहीं जा सकता जब तक कि उनका सम्बन्ध व्यक्ति के अनुभवों से न जुड़ जाए। अतः छोटे बालकों को प्रत्यक्ष अनुभवों की विशेष आवश्यकता है। किन्तु सामाजिक विज्ञान में तो प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों ही प्रकार के अनुभव महत्त्वपूर्ण हैं।

9. **प्रत्यक्ष अनुभवों का स्थान ग्रहण करना (Substitute for Direct Experiences)**–भूतकाल या दूरवर्ती प्रदेशों की जीवन सम्बन्धी घटनाओं का अध्ययन करते समय हो सकता है कि अपने विद्यार्थियों को प्रत्यक्ष अनुभव देना हमारे लिए सम्भव न हो। ऐसे समय में नई अवधारणाओं, नये तथ्यों तथा नए चिह्नों को समझने के लिए शिक्षण अधिगम साधन उसकी सहायता कर सकते हैं और प्रत्यक्ष अनुभवों के स्थान पर हम चित्रों तथा माडलों आदि का प्रयोग कर सकते हैं जो बहुत प्रभावपूर्ण हो सकता है। प्रत्यक्ष अनुभवों की सहायता से प्राप्त किए गए ज्ञान की अपेक्षा कहीं अधिक ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

10. **प्रत्यक्ष अनुभवों के पूरक के रूप में (Supplementary to Direct Experiences)**–शिक्षण अधिगम साधन ज्ञान प्राप्ति की दिशा में प्रत्यक्ष अनुभवों के पूरक भी सिद्ध हो सकते हैं। बालक जब किसी कपड़ा मिल या डाकघर की सैर को जाए तो इनके प्रत्यक्ष अनुभव के पश्चात् उन्हें इनसे सम्बन्धित कोई फिल्म या चलचित्र दिखाया जा सकता है। इस प्रकार वे डाकघर विभाग तथा कपड़ा उद्योग के बारे में आगे और ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

11. **पिछड़े बालकों की सहायता (Effective Aid for slow learners)**–शिक्षण अधिगम साधन पिछड़े बालकों के लिए बड़े सहायक सिद्ध होते हैं। ऐसे बच्चे पाठ्य-पुस्तक से समस्त बातें, जो आवश्यक हैं, ग्रहण नहीं कर सकते और इसलिए उन्हें पिछड़ा हुआ माना जाता है। ऐसे बालक चित्रों, फिल्मों, माडलों आदि की सहायता से नई बातों को सरलतापूर्वक सीख व ग्रहण कर सकते हैं।

12. **सुदृढ़ ज्ञान की प्राप्ति (Acquisition of efficient learning)**–प्रयोगों से सिद्ध हो चुका है कि बालक शिक्षण अधिगम साधनों के उचित प्रयोग से केवल शीघ्रतापूर्वक ही नहीं सीखते, अपितु इस प्रकार की सीखी हुई बातें उन्हें देर तक याद रहती हैं।

13. **कल्पना व निरीक्षण शक्ति का विकास (Development of the powers of imagination and observation)**–प्रतिबिम्ब शिक्षण का सर्वोत्तम साधन है। दृश्य-श्रव्य साधन जो इन्द्रियानुभव प्रदान करते हैं, वे मौखिक प्रतिबिम्बों की अपेक्षा कहीं अधिक स्पष्ट व प्रभावपूर्ण होते हैं। अतः इनके प्रयोग से शिक्षण क्रिया स्वाभाविक तथा सरल हो जाती है। शिक्षण अधिगम साधन कल्पना शक्ति को प्रेरित करते हैं तथा निरीक्षण, विश्लेषण व संश्लेषण शक्ति का विकास करते हैं।

14. **छात्र संख्या में निरन्तर वृद्धि (Continuous expansion in the size of classes)**–आधुनिक युग में शिक्षा का घेरा दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। इसलिए कक्षा के छात्रों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। ऐसी दशा में अध्यापक प्रत्येक छात्र की शंका को हल नहीं कर सकते, परन्तु उपकरणों की सहायता से वे ऐसा कर सकते हैं।

15. **एकाग्रता लाने में सहायक (Helpful in bringing concentration)**–कक्षा-कक्ष में अध्यापक के भाषण के दौरान या पाठ्य-पुस्तकें पढ़ते समय विद्यार्थियों का ध्यान भटक सकता है। परन्तु उपयुक्त प्रकार की सहायक सामग्री के होते हुए उनका ध्यान एक बिन्दु पर केन्द्रित रह सकता है। उदाहरण के तौर पर यदि कोई पाठ चलचित्र के माध्यम से पढ़ाया जाए तो बालक उसको बड़े चाव से देखेंगे और उनकी एकाग्रता बनी रहेगी।

16. **ज्ञान का विस्फोट (Knowledge Explosion)**–आज का युग ज्ञान के विस्फोट का युग है। जितनी ज्ञान में वृद्धि पिछले दो सौ वर्षों में हुई है उतनी शायद उससे पिछले दो हजार वर्षों में भी नहीं हुई। सामाजिक विज्ञान समेत सभी विषयों का पाठ्यक्रम बहुत बढ़ गया है। यदि इस विस्तृत पाठ्यक्रम को प्रभावशाली ढंग से विद्यार्थियों तक पहुँचाना है तो सहायक सामग्री (उपकरणों) की सहायता लेनी पड़ेगी।

17. **कक्षा-कक्ष में वास्तविकता लाना (Bringing reality in the classroom)**–सहायक सामग्री

कक्षा-कक्ष में वास्तविकता लाती है। मौखिक वर्णन प्रायः अस्पष्ट रहता है। अध्यापक कई बार ऐसी अपूर्ण बातें कह जाते हैं जिन्हें बालक समझ नहीं पाते। शिक्षण अधिगम साधनों के उपयोग से कक्षा-कक्ष में वास्तविकता आ जाती है और निर्देशन वास्तविक जीवन से जुड़ जाता है।

सुझाव (Suggestions) : शिक्षण अधिगम सामग्री का कोई भी रूप हो, वह बालक के लिए कई प्रकार से उपयोगी होता है, परंतु यह सामग्री जितनी उपयोगी है, उतनी ही जरूरत इसके सही उपयोग की भी है। अन्यथा यह सामग्री अपनी उपयोगिता के साथ न्याय नहीं कर पाएगी। शिक्षण अधिगम सामग्री का प्रयोग करते समय हमें निम्नलिखित बातों का अवश्य ही ध्यान रखना चाहिए–

(i) शिक्षण अधिगम सामग्री, शिक्षण-विधियों को बदलने के लिए नहीं अपितु इनको पूरक बनाने के लिए और इन्हें योजनाबद्ध करने के लिए है।

(ii) शिक्षण अधिगम सामग्री जहां तक सम्भव हो, सरल होनी चाहिए। इसमें अनावश्यक जटिलता होने से विद्यार्थी उसे अच्छी तरह से समझ नहीं पाएंगे।

(iii) जितना संभव हो सके, शिक्षण अधिगम सामग्री संक्षिप्त होनी चाहिए। इसकी अधिकता शिक्षण को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकती है।

(iv) शिक्षण अधिगम सामग्री आकार की दृष्टि से इतनी बड़ी अवश्य होनी चाहिए कि कक्षा के सभी बालक उसे आसानी से देख सकें।

(v) सहायक सामग्री का रोचक होना बहुत आवश्यक है, तभी बालकों में रोचकता तथा प्रेरणा आएगी।

(vi) शिक्षण अधिगम सामग्री यथार्थवादी (realistic) तथा अर्थपूर्ण होनी चाहिए।

(vii) इस तरह की सामग्री का चुनाव बालकों के शारीरिक, मानसिक और मनोवैज्ञानिक स्तर को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए।

(viii) अनावश्यक सहायक सामग्री के प्रयोग से बचना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने पर पाठ, पाठ न रहकर सहायक सामग्री की प्रदर्शनी ही बन जाएगा।

(ix) उपयुक्तता के सिद्धांत को ध्यान में रखकर ही शिक्षण अधिगम सामग्री का चुनाव किया जाना चाहिए।

(x) कक्षा-कक्ष में ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि बालक प्रत्यक्ष रूप से सहायक सामग्री के प्रयोग में भाग ले सके।

निष्कर्ष (Conclusion) : उपरोक्त अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि शिक्षण अधिगम सामग्री, सामाजिक विज्ञान शिक्षण में महत्त्वपूर्ण योगदान देती है। इस सामग्री को रोचक तथा प्रभावपूर्ण बनाने के लिए यह अत्यंत जरूरी है कि इसके प्रयोग में और रख-रखाव में सावधानी बरतनी चाहिए। इसके रख-रखाव तथा संग्रह का उचित ढंग से प्रबंध किया जाए।

शिक्षण अधिगम सामग्री का वर्गीकरण
(Classification of Teaching Learning Material)

❑ **शिक्षण अधिगम सामग्री के विभिन्न प्रकार कौन-से हैं? इसका वर्गीकरण कीजिए।**
(What are the various types of teaching learning material? Classify.)

उत्तर : शिक्षण अधिगम सामग्री का वर्गीकरण विस्तृत रूप में दो प्रकार के आधारों पर किया जा सकता है–इन्द्रियों के प्रयोग के आधार पर तथा तकनीक के आधार पर। इनका विस्तृत विवरण निम्न प्रकार से है :

I. इन्द्रियों के प्रयोग के आधार पर
(Based on the Use of Senses)

इस आधार पर इनका वर्गीकरण निम्न चार उपभागों में किया जा सकता है–

1. **श्रव्य सामग्री (Audio Aids)**–इस श्रेणी में वे साधन लिए जाते हैं जो श्रवण इन्द्रियों को प्रभावित

करते हैं और इस प्रकार सुनकर सीखने में सहायता करते हैं। सहायक साधन निम्नलिखित हैं–
(क) रेडियो (Radio)
(ख) टेप रिकार्डर (Tape Recorder)
(ग) ग्रामोफोन (Grammo Phone)
(घ) लिंग्वाफोन या फोनोग्राफ (Linguaphone or phonograph)
(ङ) डिक्टाफोन (Dictaphone)
(च) लाऊडस्पीकर (Loud speaker)

2. **दृश्य सामग्री (Visual Aids)**–ये साधन चक्षु-इन्द्रियों को प्रभावित करते हैं और छात्रों को देखकर सीखने में सहायता करते हैं। इन साधनों को एक बार फिर दो उपश्रेणियों में बाँटा जा सकता है–

(1) **गैर प्रक्षेपी साधन (Non-Projective Aids)**–गैर प्रक्षेपी साधन प्रत्यक्ष रूप से चक्षु-इन्द्रियों को प्रभावित करते हैं। इनमें निम्नलिखित साधन सम्मिलित हैं–

1. माडल (Model)
2. चार्ट (Chart)
3. चित्र (Picture)
4. मानचित्र (Map)
5. ग्राफ (Graph)
6. बुलेटिन बोर्ड (Bulletin Board)
7. समाचार-पत्र (News Paper)
8. एटलस (Atlas)
9. पोस्टर (Poster)
10. फोटो (Photo)
11. ग्लोब (Globe)
12. नमूने (Specimen)
13. पाठ्य-पुस्तक चित्र व संदर्भ पुस्तकें (Text Book and Reference Books)

(2) **प्रक्षेपी साधन (Projective Aids)**–प्रक्षेपी साधनों के अन्तर्गत दृश्य-साधन वर्ग की वह सामग्री तथा उपकरण शामिल किए जाते हैं, जिन्हें किसी वस्तु या प्रक्रिया को पर्दे पर प्रक्षेपित चित्रों के रूप में दिखाए जाने के लिए प्रयोग में लाया जाता है। ये साधन निम्नलिखित हैं–

1. मूक चल-चित्र (Silent pictures)
2. फिल्म पट्टियाँ (Film strips)
3. एपीडायस्कोप (Epidiascope)
4. माया दीप (Magic lantern)
5. सूक्ष्म प्रक्षेपी (Micro Projector)
6. एपीस्कोप (Episcope)
7. शिरोपरि प्रक्षेपी (Over head projector)
8. अपारदर्शी प्रक्षेपी (Opaque projector)

(3) **दृश्य-श्रव्य सामग्री (Audio-Visual Aids)**–इसमें वे सभी साधन, सामग्री तथा उपकरण सम्मिलित किए जाते हैं जो हमारी चक्षु तथा श्रवण दोनों ही इन्द्रियों को एक साथ प्रभावित करते हैं और इस प्रकार सुनकर और देखकर दोनों प्रकार से ही ज्ञान प्राप्ति में हमारी सहायता करते हैं। ये साधन निम्नलिखित हैं–

1. दूरदर्शन (Television)
2. बोलते चलचित्र (Sound motion pictures)
3. रेडियो विजन (Radio vision)
4. सिन्कोनाइज्ड ध्वनि पट्टी प्रक्षेपी (Synchronised audio-slide projector)
5. कठपुतली का प्रदर्शन (Puppetry) आदि।

(4) **क्रियात्मक साधन (Activity Aids)**–इस क्षेत्र में वे साधन लिए जाते हैं जो देखने, सुनने तथा करने द्वारा अधिगम को प्रभावित करने में सहायक होते हैं। इसके उदाहरण हैं–

1. अभिनय करना (Dramatisation)
2. भूमिका निभाना (Role playing)
3. प्रयोगशाला तथा कार्यशाला में काम करना (Working in a laboratory or work-shop)
4. संग्रहालय (Museum)
5. चिड़ियाघर का भ्रमण (A Visit to zoo)

6. मेले और प्रदर्शनियाँ (Fairs and Exhibitions)
7. सामुदायिक साधन (Community Resources)

II. तकनीकी के आधार पर वर्गीकरण (Based on the Use of Technology)

इस आधार पर दृश्य-श्रव्य साधन को निम्नलिखित तीन भागों में बाँटा जा सकता है–

1. सरल हार्डवेयर (Simple Hardware)
2. जटिल हार्डवेयर (Complex Hardware)
3. सोफ्ट वेयर (Software)

1. सरल हार्डवेयर (Simple Hardware)–इस श्रेणी में निम्नलिखित उपकरण शामिल किए जाते हैं–

(क) एपीस्कोप (Episcope)
(ख) डायस्कोप (Diascope)
(ग) मायादीप (Magic lantern)
(घ) एपीडायस्कोप (Epidiascope)
(ङ) स्लाईड प्रक्षेपी (Slide projector)
(च) फिल्म पट्टी.प्रोजैक्टर (Film strip projector)
(छ) अपारदर्शी प्रक्षेपी (Opaque projector)
(ज) शिरोपरित प्रक्षेपी (Overhead projector)

2. हार्डवेयर उपागम या जटिल हार्डवेयर (Hardware Approach or Complex hardware)–इस श्रेणी में निम्नलिखित उपागम सम्मिलित हैं–

(क) टेलीविजन (Television)
(ख) रेडियो (Radio)
(ग) टेप रिकार्डर (Tape Recorder)
(घ) चलचित्र (Software)
(ङ) शिक्षण मशीन (Teaching Machine)
(च) कम्प्यूटर (Computer)

3. सॉफ्टवेयर (Software)–इसके अन्तर्गत उन सभी दृश्य-श्रव्य साधनों तथा सामग्री को सम्मिलित किया जाता है जिन्हें हार्डवेयर साधनों के रूप में प्रसिद्ध सरल या जटिल शैक्षिक उपकरणों में भरा जाता है। ये निम्नलिखित हैं–

(क) स्लाईड (Slide)
(ख) डॉक्यूमेन्टरीज (Documentaries)
(ग) चित्रात्मक जिसमें (Graphic Aids)
(घ) चित्र, मानचित्र, फोटोग्राफ, चार्ट, आरेख (Picture, Map, Photograph, Chart, Diagram)
(ङ) ग्राफ, व्यंग चित्र (Graph, Cartoons)
(च) मुद्रित सामग्री (Printed material)
(छ) मॉडल (Model)
(ज) नमूने (Specimen)
(झ) अभिक्रमित सामग्री (Programmed material)

निष्कर्ष (Conclusion) : उपरोक्त अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि शिक्षण अधिगम सामग्री के अन्तर्गत किसी विशेष साधन पर बल नहीं दिया जाता है, अपितु इन साधनों का प्रयोग बालक के कक्षा व ज्ञान स्तर तथा परिस्थिति के अनुसार किया जाता है। इनका सही उपयोग कैसे हो, यह कक्षा शिक्षक के ज्ञान व कक्षा व बालक की परिस्थितियों पर ज्यादा निर्भर होता है।

कुछ महत्त्वपूर्ण शिक्षण अधिगम सामग्री
(A Few Important Teaching Learning Material)

❑ **सामाजिक विज्ञान में निम्नलिखित शिक्षण अधिगम सामग्री के प्रयोग की व्याख्या करो।**
(Explain the uses of following teaching learning material in social science.)

1. **पाठ्य-पुस्तकें एवं संदर्भ पुस्तकें (Text Books and Reference Books)**
2. **डॉक्यूमेन्टरीज (Documentaries)**

3. समाचार-पत्र (News-paper)
4. मानचित्र (Maps)
5. सामुदायिक साधन (Community Resources)
6. एटलस (Atlas)
7. ई-संसाधन (E-resources)

उत्तर : सामाजिक विज्ञान को सामाजिक रुचियों तथा क्रियाओं से पूर्ण रूप से जुड़े हुए विषय के रूप में जाना जाता है। सामाजिक परिवेश में प्राप्त वास्तविक अनुभवों में इसकी अच्छी शिक्षा दी जा सकती है। बालक को इन अनुभवों से साक्षात करवाने के लिए सामाजिक विज्ञान शिक्षक द्वारा विभिन्न प्रकार की शिक्षण सहायक सामग्री तथा शिक्षण साधनों का प्रयोग किया जाता है। सामाजिक विज्ञान अध्यापक द्वारा प्रयोग की जाने वाली कुछ महत्त्वपूर्ण शिक्षण अधिगम सामग्री के विविध पहलुओं का अध्ययन अलग-अलग निम्न प्रकार से किया जा सकता है–

1. पाठ्य-पुस्तकें एवं संदर्भ पुस्तकें (Text Books and Reference Books)

आज शिक्षा को कई स्तरों–शिशु, प्राथमिक, निम्न माध्यमिक, माध्यमिक, वरिष्ठ माध्यमिक, महाविद्यालय व विश्वविद्यालय में बांटा गया है और स्तरों के लिए भिन्न-भिन्न पाठ्यचर्या (Curriculum) निश्चित की गई है। प्रत्येक स्तर की पाठ्यचर्या के आधार पर हमने उस स्तर का पाठ्य-विवरण (Syllabus) तैयार किया है। भिन्न-भिन्न स्तरों के लिए भिन्न-भिन्न विषयों की पाठ्यचर्या पर अब भिन्न-भिन्न पुस्तकों का निर्माण हुआ है। इन पुस्तकों को हम पाठ्य-पुस्तकें कहते हैं। इस प्रकार पाठ्य-पुस्तकें वे हैं जो किसी स्तर के बच्चों के पाठ्यचर्यानुसार तैयार की जाती हैं। सच पूछिए तो आज की पूरी शिक्षा पाठ्य-पुस्तकों पर ही आधारित है। आज यह शिक्षा के मुख्य साधन के रूप में प्रयोग की जाती है। पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त संदर्भ पुस्तकें भी शिक्षा के क्षेत्र में काफी उपयोगी होती हैं। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में पाठ्यपुस्तक ही सामाजिक विज्ञान शिक्षण का मुख्य आधार है। **हैरोलिकर** के अनुसार, "पाठ्यपुस्तक ज्ञान, अनुभवों, विचारों, प्रवृत्तियों तथा मूल्यों के संचय का साधन है।"

पाठ्य-पुस्तक की आवश्यकता एवं महत्त्व (Need and Importance of Text Books) : सभी विषयों के शिक्षण में पाठ्यपुस्तकों का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है, परंतु सामाजिक विज्ञान विषय की विस्तृत प्रकृति के कारण इस विषय के शिक्षण में इनकी विशेष आवश्यकता व उपयोगिता है। हमारे लिए मुद्रन-कला का अमूल्य उपहार पाठ्यपुस्तकें ही हैं। ये अध्यापक तथा विद्यार्थी दोनों के लिए समान रूप से उपयोगी हैं। पाठ्य पुस्तकों की आवश्यकता तथा महत्त्व को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

(i) **शिक्षा प्रक्रिया का व्यवस्थित होना (Educational Process becomes Organised) :** पाठ्य पुस्तकों की सहायता से शिक्षा की प्रक्रिया बड़े व्यवस्थित ढंग से चलती है। कक्षा-विशेष की पाठ्यचर्या को स्पष्ट करने, अध्यापक के लिए वर्षभर की योजना बनाने व बच्चों को बहकने से रोकने में इनकी विशेष आवश्यकता तथा उपयोगिता होती है।

(ii) **ज्ञान विस्फोट (Knowledge Explosion) :** आधुनिक युग ज्ञान के विस्फोट का युग है। बालकों की ज्ञान के प्रति जिज्ञासा व चिंतनता निरंतर बढ़ती जा रही है। उनकी जिज्ञासा व चिंतनता को तृप्त करने के लिए मौखिक शिक्षण अकेला कुछ नहीं कर सकता है, उनकी इस जिज्ञासा व चिंतनता को तृप्त करने में पाठ्यपुस्तकों तथा संदर्भ पुस्तकों की बहुत उपयोगिता है।

(iii) **ज्ञान को इकाइयों में बांटने के लिए (To Divide the Knowledge into Units) :** आज के समय में हमें पूर्ण ज्ञान को इकाइयों में बांटने की बहुत आवश्यकता है। पाठ्यपुस्तकों के आधार पर शिक्षक समस्त ज्ञान को इकाइयों में बांट सकता है। ऐसा करने से छात्र सरलता से पूर्ण ज्ञान

को प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति में पाठ्यपुस्तकों की उपयोगिता कम नहीं है।

(iv) **शिक्षण में एकरूपता लाने के लिए (To Bring About Uniformity in Teaching)** : राष्ट्रीय विकास के लिए शिक्षा में एकरूपता का होना बहुत जरूरी है। सभी विद्यार्थियों का ज्ञान स्तर व परिवेश अलग-अलग होने के उपरांत भी पाठ्यपुस्तकों की सहायता से शिक्षण में एकरूपता लाई जा सकती है। इसलिए पाठ्यपुस्तकें ही एक ऐसा साधन है, जो शिक्षण में एकरूपता ला सकती है।

(v) **कम प्रतिभा वाले अध्यापकों की कमी को पूरा करने के लिए (To make up for the Deficiency of Very Talented Teachers)** : हमारे देश में अधिकतर शिक्षक ऐसे हैं जो अपने स्वयं के ज्ञान के आधार पर सामाजिक विज्ञान जैसे विस्तृत विषय का शिक्षण नहीं दे सकते हैं। पाठ्य-पुस्तकें अध्यापकों के पूरी तरह से दक्ष न होने की कमी को पूरा करती हैं। इसलिए कम प्रतिभा वाले अध्यापकों के लिए पाठ्य-पुस्तकें बहुत उपयोगी हैं।

(vi) **भाषण विधि की सीमाओं के कारण (Due to the Limitations of Lecture Method)** : कक्षा-कक्ष में भाषण विधि से अर्जित किया हुआ ज्ञान छात्र साल के अंत तक भूल जाते हैं। ऐसा इसलिए होता है कि भाषण पद्धति की भी अपनी कुछ सीमाएं हैं। इसका प्रभाव आंशिक रूप से तथा आंशिक समय के लिए होता है। भाषण विधि से अर्जित ज्ञान को यदि पाठ्य-पुस्तकों से जोड़ दिया जाए तो निःसंदेह उसकी उपयोगिता बढ़ जाती है।

(vii) **पुस्तकालयों की अच्छी स्थिति न होना (Libraries are not in Good Shape)** : भारत के अधिकतर स्कूलों के पुस्तकालय इस स्थिति में नहीं हैं कि वहां पाठ्यचर्या से संबंधित पुस्तकें उपलब्ध हों। इन स्कूलों में पढ़ने वाले छात्रों की आर्थिक स्थिति भी ऐसी नहीं है कि वे अपने स्तर पर संदर्भ पुस्तकों की व्यवस्था कर सकें। इसलिए इस कमी को पाठ्य-पुस्तकों से ही पूरा किया जा सकता है।

(viii) **अनेक तथ्य एक ही स्थान पर (Many Facts at Once Place)** : पाठ्य-पुस्तकों में विषय-विशेष से संबंधित अन्य तथ्य एवं सूचनाएं एक ही स्थान पर पढ़ने को मिल जाती हैं। इससे बालकों को ज्ञान अर्जित करने व उसके समायोजन में आसानी होती है तथा उनका मूल्यवान समय भी बचता है। इस तरह कम समय में बालक अच्छा ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

(ix) **परीक्षा लेने में सहायक (Helpful in Giving Examinations)** : पाठ्य-पुस्तकें बच्चों के ज्ञान की परीक्षा लेने में भी अध्यापक की सहायता करती हैं। ये परीक्षा में पूछे जाने वाले ज्ञान की सीमा निश्चित करती हैं। इनकी सहायता से शिक्षक यथा स्तर के प्रश्न-पत्र बनाने में सफल होते हैं।

(x) **बोझिल पाठ्यक्रम को पूरा करना (To Complete Heavy Syllabus)** : पाठ्यक्रम के निर्माता प्रायः हर कक्षा के लिए बहुत बोझिल पाठ्यक्रम निर्धारित कर देते हैं। शिक्षा अधिकारी भी शिक्षकों पर तय सीमा से इसे पूरा करवाने के लिए दबाव डालते हैं। पाठ्यक्रम को पूरा करवाने के दबाव में अध्यापक प्रभावशाली ढंग से शिक्षण रूप अपने कार्य को अंजाम नहीं दे पाता। इसलिए इस प्रभावहीन अध्यापन का उपचार पाठ्य-पुस्तकें ही हैं।

(xi) **माता-पिता की निरक्षरता (Illiteracy of Parents)** : पाठ्य-पुस्तकें एक तरह से परिवार की निरक्षरता के विरुद्ध एक बीमा हैं। आज भी भारत में साक्षरता की स्थिति कम ही है। इस स्थिति में निरक्षर माता-पिता चाहकर भी घर पर बालकों की शिक्षण में मदद नहीं कर सकते। ऐसी स्थिति में पाठ्य-पुस्तकें ही बालकों के काम आती हैं। घर पर अध्यापक की कमी को पूरा यही पाठ्य-पुस्तकें करती हैं।

(xii) **अभ्यास के लिए (For Exercises)** : ज्ञान को सम्पूर्ण व स्थिर बनाने के लिए उसे आत्मसा

(Assimilate) करना बहुत जरूरी होता है। ऐसा केवल सतत् अभ्यास से ही किया जा सकता है। ज्ञान की प्राप्ति उस समय तक व्यर्थ है, जब तक उसे याद रखकर समय-समय उसका प्रयोग न किया जाए। सामाजिक विज्ञान विषय के विस्तृत स्वरूप को देखते हुए अभ्यास के लिए पाठ्य-पुस्तकों की आवश्यकता तथा उपयोगिता और भी बढ़ जाती है।

(xii) **सामाजिक विज्ञान एक नया विषय (Social Science is a new Subject)** : सामाजिक विज्ञान एक नवीन विषय है, इसलिए इस पर अभी पर्याप्त संख्या में अच्छी पाठ्य-पुस्तकें उपलब्ध नहीं हैं। बालकों के पथ-प्रदर्शन के लिए सामाजिक विज्ञान की अच्छी पाठ्य-पुस्तकें होना बहुत जरूरी है। इन पुस्तकों का स्वरूप ऐसा हो, जो इस नए विषय की अवधारणा तथा उद्देश्यों को स्पष्ट कर सके।

अन्य (Others) : सामाजिक विज्ञान में पाठ्य-पुस्तकों की आवश्यकता तथा उपयोगिता को स्पष्ट करने वाले कुछ अन्य कारण निम्न हैं–

(i) भारत एक निर्धन देश है। इस कारण से बालक अन्य संदर्भ पुस्तकों को प्राप्त करने में आर्थिक रूप से सम्पन्न नहीं हैं।

(ii) पाठ्य-पुस्तकें ज्ञान के साथ-साथ बच्चों का मनोरंजन भी करती हैं। इनके अध्ययन से उन्हें आनंद की प्राप्ति होती है।

(iii) जिन कक्षाओं में छात्रों की संख्या अधिक होती है, वहां पर पाठ्य-पुस्तकों की आवश्यकता व उपयोगिता काफी बढ़ जाती है।

(iv) पाठ्य-पुस्तकें छात्रों तथा सामान्य अध्यापकों को विद्वानों तथा उच्चकोटि के अध्यापकों के विचारों तथा अनुभवों को प्रदान करती हैं।

(v) पाठ्य-पुस्तकों के अध्ययन से बच्चों में स्वाध्याय की आदत का निर्माण होता है।

(vi) वे पुस्तकें पाठ को दोहराने एवं गृहकार्य करने में भी बच्चों की सहायता करती हैं।

(vii) पाठ्य-पुस्तकें शिक्षक की पूरक होती हैं।

(viii) पाठ्य-पुस्तकों की उपयोगिता इस बात में भी है कि बालक पूरी तरह से शिक्षक पर निर्भर नहीं रहता।

(ix) पाठ्य-पुस्तकों पर आधारित शिक्षण बहुत कम खर्चीला होता है, अर्थात् इनकी सहायता से एक साथ बहुत-से बालकों को पढ़ाया जा सकता है।

(x) इनके माध्यम से बच्चों को यह पता रहता है कि उन्हें क्या पढ़ना है, कितना पढ़ना है अर्थात् उसके भटकने की गुंजाइश कम रहती है।

(xi) पाठ्य-पुस्तकें अध्यापक को पाठ की तैयारी करने एवं बच्चों को पाठ पढ़ने के लिए तैयार होने, दोनों में सहायक होती हैं।

पाठ्य-पुस्तकों से होने वाली हानियां (Disadvantages of Text-Books) :

1. **अध्ययन क्षेत्र को सीमित करना (Limits the field of study)**–निश्चित पाठ्य-पुस्तकें अध्यापक एवं छात्र दोनों के अध्ययन क्षेत्र को सीमित कर देती हैं। वे प्रायः विस्तृत अध्ययन की आवश्यकता को ही नहीं समझतीं।
2. **रटने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करना (Encourages the disposition of cramming)**–पाठ्य-पुस्तकों से बच्चों को सभी आवश्यक तथ्य एवं सूचनाएँ मिल जाती हैं, वे उन्हें समझने का प्रयत्न ही नहीं करते अपितु उन्हें रटकर परीक्षा में उत्तीर्ण होने का प्रयत्न करते हैं।
3. **सैद्धान्तिक ज्ञान पर बल (Emphasis on theoretical knowledge)**–पाठ्य-पुस्तकें बच्चों को सैद्धान्तिक ज्ञान अधिक देती हैं। इनकी सहायता से शिक्षण करने पर बच्चे व्यावहारिक पक्ष से वंचित रह जाते हैं।

4. **दोषपूर्ण सामग्री (Defective material)**–पाठ्य-पुस्तकें प्रायः दोषयुक्त सामग्री से पूर्ण होती हैं। विस्तृत अध्ययन के अभाव में छात्र इन अशुद्ध सूचनाओं को रट लेते हैं और अज्ञानी से कुज्ञानी हो जाते हैं।
5. **ज्ञान स्थायी नहीं होता (Knowledge attained is not permanent)**–पाठ्य-पुस्तकों की उपस्थिति में बच्चे 'करके सीखना' की आवश्यकता नहीं समझते। इनके माध्यम से वे जो ज्ञान प्राप्त करते हैं, वह स्थायी नहीं होता।
6. **अध्यापकों द्वारा पाठ्य-पुस्तकों का सही उपयोग न करना (Even teachers do not make use of text books properly)**–अध्यापक पाठ्य-पुस्तकों का सही उपयोग नहीं करते। वे स्वयं पाठ्य-पुस्तकों का कक्षा में पठन करके अपने कर्तव्य की इतिश्री समझते हैं। बहुत से अध्यापक तो इतना भी कष्ट नहीं करते। वे तो बच्चों को ही मौन पठन का आदेश देकर कक्षा में सो जाते हैं।
7. **बच्चों का अध्ययन के प्रति सचेत न होना (Students do not remain active towards studies)**–पाठ्य-पुस्तकों के प्रयोग से सबसे बड़ी हानि यह होती है कि बच्चे अध्ययन की ओर सचेत नहीं होते, परीक्षा के समय ही वे इन पुस्तकों का अध्ययन करते हैं और कुछ थोड़ा-बहुत रटकर परीक्षा के मैदान में कूद पड़ते हैं।

पाठ्य-पुस्तक के चुनाव में ध्यान रखने योग्य बातें (Criteria for the selection of a good Text-Book) :

सामाजिक विज्ञान की पाठ्य-पुस्तक का चुनाव करते समय हमें निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए–

1. **बालकों की आवश्यकताओं के अनुरूप (It should be child centred)**–सामाजिक विज्ञान की एक अच्छी पाठ्य-पुस्तक बालकों की आयु, योग्यता तथा रुचि के अनुसार होनी चाहिए। यह विद्यार्थियों के दैनिक जीवन से सम्बन्धित होनी चाहिए।
2. **पर्याप्त संख्या में चित्र तथा मानचित्र आदि (It should be well illustrated)**– सामाजिक विज्ञान की पाठ्य-पुस्तक में चित्र, मानचित्र, आकृतियाँ, चार्ट, समय-रेखाएँ, स्कैच, ग्राफ आदि पाठ्य-सामग्री की आवश्यकता के अनुसार दिए गए हों। इससे जहाँ एक ओर पाठ्य-सामग्री अधिक स्पष्ट तथा ग्राह्य बन जाती है, वहीं दूसरी ओर विद्यार्थियों की पाठ में रुचि बनी रहती है और उनमें सौन्दर्य के प्रति प्रशंसा की भावना उत्पन्न होती है।
3. **उपयोगी अनुभव तथा अभ्यास (It should contain useful experiences and exercises)**–सामाजिक विज्ञान एक बहुत विस्तृत विषय है। विद्यार्थियों की जानकारी में वृद्धि करने के अतिरिक्त हमारा उद्देश्य इस विषय की शिक्षा द्वारा उनकी कुशलताओं तथा रुचियों का विकास करना भी है। ऐसा तभी हो सकता है जब इसके लिए परिस्थितियों, योजनाओं, समस्याओं, अभ्यासों तथा क्रियाओं द्वारा पैदा की जाएँ और विद्यार्थियों को उनके द्वारा अनुभव प्राप्त करने के अवसर दिए जाएँ। अतः इसमें सम्बन्धित सामग्री पाठ्य-पुस्तक में सम्मिलित होनी चाहिए।
4. **प्रकरणों का क्रम तार्किक हो (Topics should be logical and systematic)**– सामाजिक विज्ञान एक विशाल विषय है, जो विभिन्न क्षेत्रों से सामग्री ग्रहण करता है। इसका प्रमुख लक्ष्य बालकों को समय, स्थान तथा समाज के अनुसार उनकी स्थिति स्पष्ट करना है। यह उन सम्बन्धों का भी ज्ञान देता है, जो भूत और वर्तमान को, स्थानीय व दूरवर्ती को तथा व्यक्तिगत तथा राष्ट्रीय जीवन को अन्य देशवासियों के जीवन व संस्कृतियों से मिलाते हैं। अतः यदि विषय-वस्तु को तर्कसंगत व क्रमबद्ध प्रकरणों के रूप में न रखा गया, तो बालक तथ्यों की भूल भुलैया में ही खो सकते हैं। केवल ऐसा करके ही उन्हें मानव सभ्यता के विभिन्न पक्षों का क्रमिक विकास दर्शाया जा सकता है।
5. **स्पष्ट व सरल भाषा (Language should be simple and clear)**–सामाजिक विज्ञान की

पाठ्य-पुस्तक में वाक्य तथा शब्द लम्बे-लम्बे तथा कठिन नहीं होने चाहिए। इसकी शब्दावली का चुनाव ठीक प्रकार से किया जाए। सत्य तो यह है कि सामाजिक अध्ययन की पाठ्य-पुस्तक भाषा की पुस्तक नहीं हो सकती। इसका मुख्य उपयोग पाठ्य-सामग्री को सरल शब्दों में प्रस्तुत करना है। इसकी शैली भी सरल तथा स्पष्ट होनी चाहिए। कहीं तकनीकी शब्दों का प्रयोग यदि किया भी गया हो तो उसकी व्याख्या भली प्रकार उदाहरण सहित की जाए।

6. **यह अधिगम की उत्तम विधियों के लिए सुझाव दे (It should suggest good methods of teaching)**–पाठ्य-पुस्तक में जो पाठ्य-सामग्री दी गई हो उसका प्रयोग सिखाने के लिए क्रियात्मक सुझाव भी दिए गए हों। इसका प्रयोग बालक माडल बनाने, यात्रा तथा भ्रमणों का संगठन करने, चार्ट, नक्शे तथा अन्य प्रकार की सहायक सामग्री तैयार करने में करते हैं। प्रत्येक अध्याय के अन्त में उसका सारांश तथा अभ्यासार्थ प्रश्न दिए जाएँ, जिनका उत्तर विद्यार्थी स्वतन्त्र रूप से घर पर लिखें। बड़ी श्रेणियों के लिए लिखी पाठ्य-पुस्तक में भी प्रत्येक अध्याय के अन्त में अतिरिक्त अध्ययन के लिए संकेत दिए गए हों।

7. **पाठ्य-पुस्तक में निरन्तर सुधार तथा इसकी दोहराई की जाए (A text book should remain under constant Revision and modification)**–पाठ्य-पुस्तक को पाठ्य-सामग्री के दृष्टिगत समयानुकूल रखा जाए। ऐसा तब तक नहीं हो सकता जब तक इसमें प्रतिवर्ष जीवन तथा वातावरण में होने वाले आधुनिकतमक विकास के अनुसार दोहराई करके सुधार न किया जाए। देश के औद्योगीकरण तथा कृषि की वैज्ञानिक प्रणाली के कारण हमारे देशवासियों के जीवन में बड़ी तेजी से परिवर्तन हो रहा है। सामाजिक विज्ञान की एक अच्छी पाठ्य-पुस्तक में हमारे राष्ट्रीय जीवन से सम्बन्धित इन सभी पक्षों पर आधुनिकतम जानकारी दी जानी चाहिए।

8. **पूर्व धारणाओं से रिक्तता (It should be free from bias)**–पाठ्य-पुस्तक में कोई भी बात अवांछनीय नहीं होनी चाहिए। इसके विपरीत यह मानव के भ्रातृत्व सम्प्रदायक मिलवर्तन तथा अन्तर्राष्ट्रीय सूझ की आदतों का प्रतिपादन करने वाली हो।

9. **सह सम्बन्ध (Correlation)**–पाठ्य-पुस्तकों में संकलित पाठों की विषय-वस्तु ऐसी होनी चाहिए, जिसे सह-सम्बन्ध विधि (Correlation method) द्वारा पढ़ाया जा सके। उदाहरण के तौर पर कक्षा छः में भारत का भूगोल पढ़ाया जाता है। अतः उसकी भाषा-पुस्तकों में भारत के ग्राम, नगर, पहाड़ी प्रदेश, प्राकृतिक दृश्य एवं उद्योग धन्धों सम्बन्धी लेख संकलित होने चाहिए।

10. **छपाई (Printing)**–पुस्तक के मुद्रण का अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। छोटी कक्षाओं के बालक बड़े तथा सुन्दर अक्षरों में रुचि रखते हैं। ज्यों-ज्यों कक्षा का स्तर बढ़ता जाता है, बालक सरलता से सूक्ष्मता की ओर बढ़ते जाते हैं। छपाई की निम्नलिखित विशेषताओं की ओर ध्यान देना होगा–

(i) **स्याही (Ink)**–छपाई में काली, गहरी और चमकदार स्याही का प्रयोग करना चाहिए। इस प्रकार की स्याही से छपी पुस्तकों में बालकों की रुचि पुस्तक पढ़ने में बढ़ती है।

(ii) **आकार (Size)**–पुस्तक की छपाई का टाइप स्तरानुकूल हो। छोटी कक्षाओं में बड़े तथा बड़ी कक्षाओं में छोटे अक्षरों का प्रयोग करना चाहिए। यह टाईप प्राथमिक कक्षाओं के लिए 24 point, मिडिल कक्षाओं के लिए 18 point तथा उच्च कक्षाओं के लिए 16 या 12 point होना चाहिए। इस बात को सदा ध्यान में रखना चाहिए कि पाठ्य-पुस्तकों का टाइप 12 point से छोटा किसी भी कक्षा में नहीं होना चाहिए।

(iii) **पंक्तियों में दूरी (Distance between the lines)**–दो पंक्तियों के बीच की दूरी पर्याप्त होनी चाहिए। यह दूरी कम से कम 1/2 cm अवश्य हो। पहली कक्षा की पुस्तक में यह दूरी 1 cm होनी चाहिए। यह अन्तर तथा दूरी शब्दों तथा अक्षरों के आकार के अनुपात में घटाई या बढ़ाई जा सकती है। इसके साथ-साथ ही पंक्तियों की लम्बाई भी कक्षा के अनुसार 8 cm तक होनी चाहिए। प्रत्येक पृष्ठ के चारों ओर मार्जिन (Margin) भी छुटा होना चाहिए।

(iv) **शुद्ध छपाई (Correct Printing)**–पाठ्य-पुस्तक छपवाते समय अशुद्धियों की ओर सावधान रहना चाहिए। गलत छपी हुई पुस्तक एक कागज की गड्डी के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं होती। अतः छपाई में अशुद्धियाँ बिल्कुल नहीं होनी चाहिएं, अन्यथा बालक न तो उसे पसन्द करेंगे, अपितु उन में अशुद्ध लेखन पाठन की बुरी आदत भी पड़ जाएगी।

11. **पाठ्य-पुस्तक में कोई उपदेश नहीं (Text book free from indoctrination)**– पाठ्य-पुस्तक में केवल तथ्य होने चाहिएं और कोई भी अवांछनीय तत्त्व नहीं होना चाहिए। अच्छी पाठ्य-पुस्तक वही है जो केवल सत्य के दर्शन कराती है और पूर्वाग्रहों से मुक्त हो। पाठ्य-पुस्तक के लेखक में भावात्मक अन्तः क्रियाएँ नहीं होनी चाहिए।

सामाजिक विज्ञान शिक्षण में संदर्भ पुस्तकें (Reference Books in Social Science Teaching): आज के समय में कुछ बालकों की ज्ञान की जिज्ञासा व चिंतनता इतनी बढ़ गई है कि उन्हें मात्र पाठ्य-पुस्तकों तथा अध्यापकों की उपलब्धता से तृप्त नहीं किया जा सकता है। उनकी इस जिज्ञासा व चिंतनता को संदर्भ पुस्तकों की सहायता से काफी हद तक तृप्त किया जा सकता है। साधारण बालक तो पाठ्य-पुस्तकों से भी ज्ञान प्राप्त कर सकता है, परंतु कक्षा में कुछ बालक अति प्रभावशाली होते हैं, उनके लिए इस प्रकार की पुस्तकें बहुत उपयोगी होती हैं। इसके अतिरिक्त आज का युग प्रतियोगिता का युग है, जिसमें सफलता प्राप्त करने के अथाह मेहनत व विस्तृत ज्ञान की आवश्यकता होती है। आज कोई भी प्रतियोगी परीक्षा ऐसी नहीं है, जो एक विशेष विषय मात्र से संबंधित हो। इसके अतिरिक्त संबंधित विषय की पाठ्य-पुस्तकें भी उतना ज्ञान नहीं दे पातीं, जितने की जरूरत आज के प्रतियोगी बालक को है। इसका कारण यह है कि पाठ्य-पुस्तकों का निर्धारण सामान्य स्तर के बालकों की बुद्धि क्षमता के अनुसार किया जाता है। इसलिए इनमें उन प्रतिभाशाली छात्रों की बुद्धि क्षमता की अवहेलना होती है, जो सामान्य से अलग हैं। इसलिए आज प्रत्येक स्कूल के पुस्तकालय में पाठ्य-पुस्तकों के अलावा संदर्भ पुस्तकों को रखना अनिवार्य हो गया। इससे अध्यापकों व बालकों को विषय-वस्तु के विविध पहलुओं को जानने का अवसर प्राप्त होता है। बालकों के ज्ञान में वृद्धि करने में इनकी भूमिका विशेष रूप से उपयोगी होती है। इसके लिए निम्न विषय-वस्तु वाली संदर्भ पुस्तकें उपयोगी हो सकती हैं–

(i) सामाजिक विज्ञान के उपविषयों (इतिहास, नागरिक शास्त्र, भूगोल, अर्थशास्त्र व समाजशास्त्र) से संबंधित प्रमाणित पुस्तकें, जो इन विषयों से संबंधित मूल्यवान व ज्ञानवर्धक जानकारी उपलब्ध करवाती हों।

(ii) ऐतिहासिक, भौगोलिक, राजनीतिक व आर्थिक स्वरूप को दर्शाने वाले विभिन्न प्रकार की एटलस।

(iii) भारत का संविधान, विभिन्न शिक्षा आयोगों के प्रतिवेदन, नई शिक्षा नीति के प्रतिवेदन, तथा संग्रहालयों से संग्रहीत ऐतिहासिक दस्तावेज इस श्रेणी में रखे जा सकते हैं।

(iv) जनसंख्या संबंधी आंकड़ों, आर्थिक संसाधनों संबंधी आंकड़ों तथा विभिन्न सरकारी योजनाओं से संबंधित आंकड़ों को दर्शाने वाली प्रमाणिक पुस्तकों को भी इस श्रेणी में रखा जा सकता है।

(v) संदर्भ पुस्तकों संबंधी श्रेणी में पुरातत्त्व विभाग के सर्वेक्षण संबंधी प्रतिवेदन, सामाजिक विज्ञान विषय से संबंधित शोध ग्रन्थ आदि को भी रखा जा सकता है।

(vi) बालकों की शब्दों पर पकड़ बनाने के लिए विभिन्न भाषाओं के शब्दकोश को भी संदर्भ पुस्तकों की श्रेणी में रखा जा सकता है।

(vii) सामाजिक विज्ञान से संबंधित ऐतिहासिक महापुरुषों, महान राजनीतिज्ञों, महान अर्थशास्त्रियों, महान समाज सुधारकों व समाजशास्त्रियों तथा महान आध्यात्मिक गुरुओं की जीवनियों को भी संदर्भ पुस्तकों की श्रेणी में रखा जा सकता है।

(viii) सामाजिक विज्ञान विषय की शब्दावली को परिभाषित करने वाले शब्दकोश बालकों के लिए अति उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं, क्योंकि प्रायः बालक इस विषय में प्रयुक्त शब्दावली को समझने में

असमर्थ होते हैं। ये शब्दकोश बालक के साथ-साथ अध्यापक के लिए भी उपयोगी सिद्ध होते हैं।

(ix) वार्षिक व मासिक स्वरूप वाली पुस्तकें या पत्रिकाएं भी बालक को समकालीन समय में घटने वाली घटनाओं तथा परिवर्तनों से अवगत करवाती हैं। इसलिए इस प्रकार की संदर्भ पुस्तकों की उपयोगिता को भी कम करके नहीं आंका जा सकता है।

सामाजिक विज्ञान क्योंकि माध्यमिक स्तर से पढ़ाया जाता है, इसलिए इस स्तर के बालकों को इतनी समझ नहीं होती कि वे अपने दम पर इन पुस्तकों का सही विवेचन व अध्ययन कर सकें। इसलिए इस स्तर पर इन पुस्तकों के प्रयोग के समय सामाजिक विज्ञान अध्यापक की जिम्मेदारी और ज्यादा बढ़ जाती है। इसे बालकों के सामने आने वाली समस्याओं का सरल भाषा में समाधान करना चाहिए, क्योंकि आमतौर पर संदर्भ पुस्तकों की शब्दावली तथा भाषा माध्यमिक स्तर के बालकों के बौद्धिक स्तर से ज्यादा होती है। इसलिए अध्यापक को इन पुस्तकों का चुनाव करते समय विशेष ध्यान रखना चाहिए कि इनका स्तर बालकों के बौद्धिक स्तर से ज्यादा ऊंचा न हो। इस तरह की पुस्तकों को जहां तक सम्भव हो, स्कूल के पुस्तकालय में ही उपलब्ध करवाने का प्रयास करना चाहिए।

निष्कर्ष (Conclusion) : उपरोक्त अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि पाठ्य पुस्तकें स्कूली शिक्षा की नींव हैं। इनके बिना औपचारिक शिक्षा की सफलता निश्चित करना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। इसके अतिरिक्त संदर्भ पुस्तकें भी बालक के लिए कम उपयोगी नहीं हैं, विशेषकर प्रतिभावान बालकों के लिए। इसलिए हम कह सकते हैं कि पाठ्य-पुस्तकों व संदर्भ पुस्तकों के समन्वय से शिक्षा की गुणवत्ता को सुधारा जा सकता है।

2. डॉक्यूमेन्टरीज (Documentaries)

डॉक्यूमेन्टरीज (Documentaries) को हम सरल तथा साधारण भाषा में 'लघु फिल्म' की संज्ञा दे सकते हैं। इस तरह की लघु फिल्में आम फिल्मों की तरह काल्पनिक कहानी अथवा तथ्यों पर आधारित नहीं होती हैं, अपितु इनका संबंध वास्तविक घटनाओं, तथ्यों व वृत्तांतों से होता है। इनमें घटनाओं, तथ्यों व सूचनाओं की क्रमबद्धता स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। इस तरह की फिल्मों का घटनाओं, तथ्यों व सूचनाओं के साथ आपसी तालमेल इनकी शैक्षिक उपयोगिता को काफी बढ़ा देता है। सरकारी योजनाओं के प्रचार एवं प्रसार, ऐतिहासिक स्थलों व भवनों, विभिन्न संग्रहालयों में संग्रहित सामग्री की व्याख्या करने के लिए इस तरह की लघु फिल्मों (Documentaries) का प्रयोग किया जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में इस शिक्षण अधिगम सामग्री का महत्त्व इसलिए भी है कि इसकी सहायता से विभिन्न विषयों की सूक्ष्म बातों को पर्दे पर उतारा जा सकता है। इस तरह की फिल्मों का संबंध वास्तविक घटनाओं, तथ्यों व सूचनाओं से होता है तथा इसके साथ इनकी संबंधता व क्रमबद्धता इन्हें शैक्षिक दृष्टि से बहुत ज्यादा उपयोगी बनाती है। आज का युग सूचना क्रांति का है, जिसमें इस तरह के शिक्षण साधनों को उपलब्ध करवाना कोई विशेष बात नहीं है। आज सरकारी स्कूलों में भी इस तरह के शैक्षिक संसाधनों की भरमार है। इसलिए खर्चे की दृष्टि से तथा समय की दृष्टि से यह शैक्षिक साधन बालकों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

प्रकार (Types) : आधुनिक समय की शिक्षा जरूरतों ने डॉक्यूमेन्टरीज जैसे शिक्षण सहायक साधनों का महत्त्व काफी बढ़ा दिया है। इसलिए हमें डॉक्यूमेन्टरीज के विभिन्न प्रकारों का ज्ञान भी अवश्य होना चाहिए, ताकि हम शिक्षण में इसके सभी रूपों का सही प्रयोग कर सकें। इसके प्रकारों को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

(i) **बिना आवाज की डॉक्यूमेन्टरीज (Silent Documentaries) :** इस तरह की लघु फिल्मों में बिना आवाज के चलते-फिरते चित्र दिखाए जाते हैं। इनमें श्रव्य की अपेक्षा दृश्य पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया जाता है।

(ii) **चित्रात्मक विवरण वाली डॉक्यूमेन्टरीज (Documentaries with Caption) :** इस तरह की

लघु फिल्मों में चलते-फिरते चित्रों के साथ उनके विविध पहलुओं को प्रकट करने के लिए विवरण को भी दिया जाता है, परंतु इनमें भी आवाज नहीं होती है। चित्रों के साथ दिया जाने वाला विवरण स्क्रीन पर साथ-साथ लिखा हुआ चलता है। विवरण प्रस्तुत करने की इस भाषा को कहा जाता है।

(iii) कमेन्टरी वाली डॉक्यूमेन्टरीज (Documentaries with Commentory) : इस तरह की शैक्षिक लघु फिल्मों में चित्रों के साथ विवरण भी सुनाई देता है। लघु फिल्म में दिखाए जाने वाले तथ्यों या सूचना इत्यादि को सही प्रकार से समझाने के लिए एक विवरणकर्ता विवरण प्रस्तुत करता है। इस तरह की लघु फिल्मों को भी आगे दो भागों में बांटा जा सकता है। पहली, इस तरह की फिल्मों में विवरण प्रस्तुत करने वाला दिखाई नहीं देता है तथा पीछे से चित्रों से तालमेल करते हुए आवाज आती है। दूसरी, इस तरह की डॉक्यूमेन्टरीज में चित्रों के साथ विवरण देने वाला भी दिखाई देता है।

महत्त्व (Importance) : डॉक्यूमेन्टरीज एक प्रभावशाली शिक्षण साधन है। इसके शैक्षिक महत्त्व को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

(i) छात्रों को अधिगम के लिए प्रेरित करने में इनसे काफी सहायता मिलती है।

(ii) इसको बार-बार दिखाया जा सकता है। इस सुविधा के कारण कठिन से कठिन विषय को भी आसानी से अधिगम किया जा सकता है।

(iii) कुछ विषयों की यथार्थ जानकारी देने के लिए डॉक्यूमेन्टरीज का प्रयोग काफी उपयोगी सिद्ध होता है।

(iv) विभिन्न प्रकार की सामाजिक कुरीतियों को दूर करने में भी इनकी भूमिका काफी महत्त्वपूर्ण होती है।

(v) छात्रों में विभिन्न प्रकार के कार्य कौशल को विकसित करने में भी डॉक्यूमेन्टरीज विशेष योगदान दे सकती है।

(vi) डॉक्यूमेन्टरीज की सहायता से छात्रों की मनोवृत्तियों, दृष्टिकोणों तथा व्यवहार में असीम परिवर्तन किया जा सकता है।

(vii) विभिन्न ऐतिहासिक स्वरूप वाली डॉक्यूमेन्टरीज प्राचीन काल का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करके, छात्रों को काल विशेष की यथार्थ जानकारी देने में सहायक होती हैं।

(viii) श्रेष्ठ कोटि की बनी हुई डॉक्यूमेन्टरीज छात्रों की समस्या समाधान की योग्यता विकसित करने में सहायक होती हैं।

(ix) वैज्ञानिक आविष्कारों व विभिन्न भौगोलिक स्थितियों से बालकों को परिचित करवाने में शिक्षण अधिगम का यह साधन हमारी काफी सहायता करता है।

(x) राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व के विभिन्न विषयों से भी छात्रों को डॉक्यूमेन्टरीज की सहायता से आसानी से परिचित कराया जा सकता है।

उचित उपयोग (Proper Use) : शिक्षण अधिगम साधन चाहे कितना ही महत्त्वपूर्ण क्यों न हो, यदि उसका सही इस्तेमाल न किया जाए तो उसकी कोई उपयोगिता नहीं रहती। डॉक्यूमेन्टरीज के उचित उपयोग को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

(i) अध्यापक को डॉक्यूमेन्टरीज की पूरी कार्यप्रणाली का ज्ञान होना चाहिए।

(ii) अध्यापक को उस स्थान या स्रोत का भी पता होना चाहिए, जहां से शैक्षिक डॉक्यूमेन्टरीज को प्राप्त किया जा सकता है।

(iii) बालकों को दिखाई जाने वाली डॉक्यूमेन्टरीज की विषय-वस्तु अध्यापक को पहले से ही पता होनी चाहिए।

(iv) डॉक्यूमेन्टरीज दिखाने से पहले छात्रों को अध्यापक द्वारा मानसिक तथा शैक्षिक रूप से तैयार कर लेना चाहिए।

(v) डॉक्यूमेन्टरीज का प्रदर्शन जिस स्थान या कमरे में किया जाए, वहां अंधेरे की व्यवस्था होनी चाहिए।

(vi) इसे दिखाते समय इसके प्रमुख अंशों की ओर छात्रों का ध्यान आकर्षित करना चाहिए। कभी-कभी इसे बीच में रोककर विषय का स्पष्टीकरण कर देना चाहिए।

(vii) इस शिक्षण अधिगम साधन के प्रयोग के समय प्रश्नों की सहायता से छात्रों को क्रियाशील बनाने का प्रयास भी करना चाहिए।

(viii) डॉक्यूमेन्टरीज दिखाने के बाद बालकों में उत्पन्न जिज्ञासा को शांत करने का प्रयास किया जाना चाहिए।

(ix) डॉक्यूमेन्टरीज के समाप्त होने पर इसकी विषय-वस्तु पर छात्रों को स्वतंत्र रूप से विचार-विमर्श करना चाहिए।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि यदि शिक्षण अधिगम के इस साधन का सही प्रकार से उपयोग किया जाए तो इसके सकारात्मक परिणाम प्राप्त हो सकते हैं। डॉक्यूमेन्टरीज ऐसा श्रव्य-दृश्य शैक्षिक संसाधन है, जो बालकों के प्राप्त ज्ञान को काफी हद तक उपयोगी बना सकते हैं।

3. समाचार-पत्र (News Paper)

मुद्रण कला के आविष्कार का सबसे बड़ा वरदान समाचार-पत्र को कहें, तो कोई अतिश्योक्ति न होगी। आज के युग में समाचार-पत्र मनुष्य की दिनचर्या का एक अभिन्न अंग बन चुका है। प्रतिदिन सुबह सवेरे सारी दुनिया में घटित होने वाली घटनाओं, परिवर्तनों तथा अन्य प्रकार की हलचलों की सूचना देने वाला समाचार-पत्र आज हमारे समाज की एक बहुत बड़ी आवश्यकता बन चुका है। यदि समाचार-पत्रों के संपादक अपने कर्तव्य का परिचय दें तो निश्चित रूप से आज के समाज के लिए वरदान है। इनमें सेवाभाव है तथा इनका मूल्य कम होने के कारण इनकी पहुंच जनसाधारण तक है। समाचार-पत्रों का हमारे दैनिक जीवन में अनंत महत्त्व है। लोगों की सुबह समाचार-पत्रों के साथ ही होती है। इसके माध्यम से लोगों को विश्व की तमाम महत्त्वपूर्ण जानकारियां कुछ ही क्षणों में प्राप्त हो जाती हैं। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, इसलिए वह अपने आस-पास घटने वाली गतिविधियों से परिचित रहना चाहता है। मनुष्य अपनी योग्यता तथा साधनों के अनुरूप समय-समय पर समाचार जानने के लिए प्रयत्नशील रहता है। समाचार-पत्र आज सर्व सुलभ है, इसने संसार को एक परिवार का रूप दे दिया है। इसलिए आज समाचार-पत्र शक्ति का स्रोत माने जाते हैं। समाज की उन्नति में समाचार-पत्रों का अहम् योगदान रहा है।

समाचार-पत्रों की पृष्ठभूमि (Background of News-paper) : समाचार-पत्रों का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। प्रथम ज्ञात समाचार-पत्र 59 ई.पू. का 'द रोमन एक्टा डिडरना' था। भारत में समाचार-पत्र की शुरुआत 'बंगाल गजट' से हुई थी, जो अंग्रेजी भाषा में छपता था। इसका प्रथम प्रकाशन 1780 ई. में हुआ था। आधुनिक समाचार-पत्रों के प्रकाशन और प्रसार का श्रेय फ्रांस तथा इंग्लैण्ड को प्राप्त है। भारत में प्रथम हिन्दी समाचार-पत्र 'उदंत मार्तण्ड' था, जिसका प्रकाशन 30 मई, 1826 को हुआ था। शुरुआती समय में समाचार-पत्रों का प्रयोग सैनिकों को सूचना देने के लिए किया जाता था।

वर्तमान में समाचार-पत्रों का स्वरूप (Present Nature of News-Paper) : आज समाचार-पत्रों का क्षेत्र काफी बढ़ गया है। ये संचार के साधनों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इसलिए आज यह हमारे ज्ञान का सशक्त माध्यम बनकर उभरा है। यह देश के चरित्र को ऊँचा उठाने वाले हैं तथा न्याय का पक्ष लेने व अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने वाले हैं, ये राष्ट्रभाषा के विकास में सहायक हैं। नवीन साहित्य की सृजना में इनके योगदान को नहीं भुलाया जा सकता है। यदि हम सकारात्मक दृष्टि से अपने कर्तव्य का निर्वाह करें

तो ये निश्चित ही देश की काया पलटने में सक्षम हैं। आज समाचार-पत्रों को समाज का दर्पण कहा जाता है, क्योंकि यह उन समस्त घटनाओं को जो प्रतिदिन घटती हैं यथा संभव वैसे ही हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है। इनमें देश-विदेश की घटनाओं, रोजगार, प्रचार, मनोरंजन, उद्घोषणाओं आदि की लिखित जानकारियां होती हैं। हम इसके माध्यम से अपने संदेश, शिकायत, उद्घोषणाएं, शिकायत आदि प्रचारित करके सरकार सहित आम जनता को सूचित कर सकते हैं। संपादकों तथा पत्रकारों के माध्यम से समाज में होने वाली आपराधिक कृत्यों, अपराधों आदि को रोकने तथा जन-साधारण में मदद मिलती है। यह नौजवानों को नई दिशा तो प्रदान करता ही है, लेकिन साथ ही बच्चों की अभिरुचि पढ़ाई में लगाता है। अनेक समाचार-पत्रों में बच्चों की शिक्षा से संबंधित विशेष कॉलम होते हैं, जो उनको सामाजिक बनाने में अहम् योगदान देते हैं। इसलिए समाचार-पत्रों की उपयोगिता सर्व-व्यापक है।

शिक्षा के क्षेत्र में समाचार-पत्रों की भूमिका (Role of News-paper in Educational Field) : सामाजिक विज्ञान शिक्षण में समाचार-पत्रों की भूमिका पर किसी को संदेह नहीं है। छात्र तथा शिक्षक मिलकर इन समाचार-पत्रों को शिक्षण सहायक सामग्री के रूप में आसानी से प्रयोग कर सकते हैं। समाचार-पत्रों में रोजाना कोई न कोई ऐसी खबर अवश्य होती है, जिस पर सामाजिक विज्ञान की कक्षा में चर्चा की जा सकती है। इस तरह इसके उपयोग से बच्चों को सामाजिक रूप से सशक्त बनाया जा सकता है। **डॉ. एम.एस. सघदेवा** का यह कथन कि "समाचार-पत्र औपचारिक शिक्षण में कभी-कभार की कुछ महत्त्वपूर्ण शिक्षण-उद्देश्यों की पूर्ति करता है।" आंशिक रूप से सत्य है। वस्तुतः एडगर गेल ने अपने अनुभव शंकु शिखर पर जिस 'शाब्दिक प्रतीक' का उल्लेख किया है, उसके अन्तर्गत समाचार-पत्र भी आ जाते हैं क्योंकि समाचार-पत्र में सभी महत्त्वपूर्ण जानकारियां, तथ्य, प्रत्यय आदि शाब्दिक प्रतीकों के माध्यम से भी प्रस्तुत किए जाते हैं। वास्तव में शिक्षा का एक मुख्य उद्देश्य यह भी है कि विद्यार्थी कक्षा-कक्ष में प्राप्त अधिगम अनुभवों के साथ बाह्य जगत की समस्याओं के साधन के रूप में अपने अधिगम-अनुभवों का समुचित प्रयोग कर सके। जिस प्रकार अध्ययन-यात्रा से विद्यार्थी को बाह्य-जगत से प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करने का अवसर प्राप्त होता है, ठीक उसी प्रकार समाचार-पत्रों के माध्यम से भी उसके मस्तिष्क में ~~अनेक~~ नए प्रत्यय, संकल्पनाएं आदि का विकास होता है। यह दूसरी बात है कि प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के लिए (विशेषकर भारत जैसे विकासशील देशों में) समाचार-पत्र अधिगम-अनुभव प्राप्ति में अधिक उपयोगी नहीं है। उच्च स्तर की कक्षाओं के विद्यार्थी प्रायः समाचार-पत्रों का उपयोग शैक्षिक-उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए करते हैं।

शैक्षिक महत्त्व (Educational Importance) : हिन्दी में छपने वाला 'रोजगार समाचार' तथा अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित होने वाला समाचार-पत्र 'द एम्पलॉयमैंट न्यूज' अपने आरंभिक दो पृष्ठों पर अत्यंत महत्त्वपूर्ण सूचनाएं व जानकारियां उपलब्ध करवाता है। इसी प्रकार अनेक साहित्यिक पत्रिकाएं, जैसे–'हंस' व 'आलोचना' आदि हिन्दी विषय के अधिगम में अत्यंत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई हैं। अनेक विद्यालयों में प्रतिदिन के मुख्य समाचारों से विद्यार्थियों को अवगत कराने के लिए 'समाचार-पट्ट' की भी व्यवस्था होती है। इसी प्रकार समाचार-पत्रों व पत्रिकाओं में प्रायः विविध जीव-जंतुओं, पेड़-पौधों, भवनों, पर्यटन स्थलों आदि के चित्र उनके परिचय के साथ प्रकाशित होते हैं। माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी इन चित्रों को देखकर व उनके बारे में दी गई जानकारी को पढ़कर अधिगम-अनुभव प्राप्त कर सकते हैं। शिक्षक भी उन्हें ऐसे चित्रों का संग्रह करके चार्ट, एलबम आदि बनाने के लिए प्रेरित कर सकता है, जो आगे चलकर प्रदर्शनी वस्तुओं की तरह शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में सहायक सामग्रियों के रूप में प्रयुक्त की जा सकती है। समाचार-पत्रों व पत्रिकाओं के शैक्षिक महत्त्व को सरल व स्पष्ट भाषा में निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

1. समाचार-पत्र, पत्रिकाएँ ज्ञान-प्राप्ति का प्रभावी स्रोत हैं। इनके माध्यम से विज्ञान, कला, वाणिज्य, राजनीति आदि क्षेत्रों का विस्तृत ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।
2. पाठ्य-पुस्तकों से विद्यार्थियों को जो ज्ञान प्राप्त होता है, उसमें यदि कमी रह गई हो, तब वह समाचार-पत्रों के माध्यम से इसकी पूर्ति कर सकता है। उदाहरण के लिए–देश के नवनिर्वाचित

राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री आदि की जीवनी सबसे पहले उन्हें समाचार-पत्रों के माध्यम से ही प्राप्त हो सकती है।

3. समाचार-पत्र, पत्रिकाएँ विद्यार्थियों को उनकी सांस्कृतिक परम्पराओं, रीतियों आदि से परिचित कराती हैं। इनमें धार्मिक व राष्ट्रीय पर्वों से संबंधित अधिकतर जानकारी होती है।

4. समाचार-पत्र, पत्रिकाएँ विद्यार्थियों के खाली समय का सदुपयोग करने में अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुई हैं। वे इन पत्र-पत्रिकाओं से रंगीन चित्र, रोचक जानकारी आदि एकत्र करके चार्ट, एलबम आदि बना सकते हैं और उसे दूसरे विद्यार्थियों का दिखाकर उन्हें भी अधिगम-अनुभव प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहन दे सकते हैं।

5. समाचार-पत्र व पत्रिकाएँ विद्यार्थियों में पठन-कौशल का विकास करने में भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई हैं। यह पठन-कौशल उन्हें पाठ्य-पुस्तकों को पढ़ने व अनुदेशनात्मक सामग्री का उपयोग करने के लिए प्रेरित करता है।

6. समाचार-पत्र व पत्रिकाओं से विद्यार्थियों में साहित्य के प्रति रुचि उत्पन्न होती है। वे इनमें प्रकाशित कविताओं व कहानियों को बड़े चाव से पढ़ते हैं।

7. अनेक समाचार-पत्रों में रविवार को एक पृष्ठ विद्यार्थियों के लिए होता है, जिसमें विद्यार्थियों द्वारा भेजे गए लेखों, रेखाचित्रों, कविताओं आदि को प्रकाशित किया जाता है। इस प्रकार ये समाचार-पत्र, पत्रिकाएँ विद्यार्थियों में सृजनात्मक क्षमता का विकास करने में उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

8. समाचार-पत्र में चूँकि प्रत्येक घटना, तथ्य, विषय आदि के संबंध में नवीनतम जानकारी होती है, अतः वे विद्यार्थियों के ज्ञान को अद्यतन (Up-to-date) रखने में सहायक हैं।

9. विद्यार्थियों के भाषायी कौशल का विकास करने में भी समाचार-पत्रों की भूमिका असंदिग्ध है। विद्यार्थी इनसे नए-नए शब्दों (एडगर डेल के शब्दों में 'नया प्रत्यय') को ग्रहण करके अपने शब्द-भण्डार में वृद्धि करते हैं।

10. समाचार-पत्र ज्ञान प्रदान करने के साथ-साथ विद्यार्थियों का मनोरंजन भी करते हैं।

इसी प्रकार 'प्रतियोगिता दर्पण', 'कम्पीटिशन मास्टर', 'कम्पीटिशन सक्सेस रिव्यू' आदि शैक्षिक पत्रिकाएँ तो शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति में प्रत्यक्ष रूप से सहयोगी सिद्ध हुई हैं। इन शैक्षिक पत्रिकाओं में विद्यार्थियों को न केवल विषयों से संबंधित जानकारी प्रदान की जाती है, बल्कि उन्हें सूत्रों व उदाहरणों का सामन्यीकरण करके विभिन्न समस्याओं का समाधान करने का अवसर भी प्रदान किया जाता है। आज के प्रतिस्पर्धात्मक युग में इस कौशल का विकास करना प्रत्येक विद्यार्थी के लिए आवश्यक है।

निष्कर्ष (Conclusion) : उपरोक्त अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि भले ही समाचार-पत्र प्रत्यक्ष रूप से शिक्षण-उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक न हो, परंतु परोक्ष रूप से वे बालकों के पठन-कौशल का विकास करने, उनमें सृजनात्मक क्षमता उत्पन्न करने एवं उसका विकास करने, उनमें लेख-कौशल का विकास करने, विविध विषयों से संबंधित तत्कालीन जानकारी प्रदान करने, उनके शब्द भंडार में वृद्धि करने व खाली समय का सदुपयोग करने आदि में अत्यधिक उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं।

4. मानचित्र (Maps)

मानचित्र को मानव की सबसे प्रथम लिखित कृति माना जाता है। यह एक ऐसा उपकरण है, जिसके द्वारा संसार को क्षणिक समय में एक सिरे से दूसरे सिरे तक देखा जा सकता है। सामाजिक विज्ञान में मानचित्रों का प्रयोग किसी स्थान की दूरी, देश की सांस्कृतिक, भौगोलिक स्थिति, विश्व के विभिन्न देशों की स्थिति, देश की नदी, समुद्र, जनसंख्या, पैदावार, खनिज पदार्थ, जलवायु आदि बातों से स्पष्ट ज्ञान आदि प्राप्त करने हेतु किया जाता है। इसके अतिरिक्त मानचित्रों का प्रयोग किसी भी स्थान की उचित भौगोलिक स्थिति तथा भूगोल में बच्चों को किसी स्थान की दूरी, उसका क्षेत्रफल तथा विभिन्न प्रदेशों की वास्तविक स्थिति

का ज्ञान स्पष्ट रूप से प्रदान करने के लिए किया जाता है। सामाजिक इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र, भूगोल आदि किसी भी विषय से संबंधित मानचित्र शिक्षण प्रक्रिया को रुचिकर बनाने में सहायता प्रदान करते हैं। केवल मानचित्र ही ऐसा उपकरण है, जिसके द्वारा विश्व को कक्षा में उपस्थित किया जा सकता है। अध्यापक स्वतंत्र चित्रण की सहायता से ब्लैकबोर्ड पर छपे चित्रों की नकल करके नक्शा बना सकता है। ट्रेसिंग द्वारा भी नक्शे बनाए जा सकते हैं। लकड़ी या प्लाइवुड के तख्तों पर रुई व कागज की लुगदी लगाकर उभरे हुए नक्शे बनाए जाते हैं। अतः अध्यापक आवश्यकतानुसार जैसे भी चाहे नक्शा बना सकता है।

मानचित्र के प्रकार (Types of Maps) : सामाजिक विज्ञान जैसे विषय में अन्य किसी भी सहायक सामग्री की अपेक्षा मानचित्रों का विशेष महत्त्व है। स्कूल के बालकों हेतु तैयार की जाने वाली सामाजिक विज्ञान की पाठ्य-पुस्तकों में प्रायः अनेक चित्र तथा मानचित्र होते हैं। इसलिए मानचित्रों के प्रकार को जानना भी बहुत जरूरी है। मानचित्र मुख्य रूप से तीन प्रकार के होते हैं–

1. **फ्लैट मानचित्र (Flat Maps)** : इन मानचित्रों की सहायता से विश्व के विभिन्न देशों की प्राकृतिक दशा, राजनीतिक व्यवस्था, तापक्रम, जनसंख्या, वर्षा, यातायात व आवागमन के साधनों का वितरण, इतिहास व भूगोल के पाठों का स्पष्टीकरण, लड़ाइयों, संधियों, सीमाओं, सेनाओं तथा यात्राओं के रास्ते आदि को प्रदर्शित किया जा सकता है।
2. **राहत मानचित्र (Relief Maps)** : इस प्रकार के मानचित्रों का प्रयोग पृथ्वी के धरातल को प्रदर्शित करने के लिए किया जाता है।
3. **स्कैच मानचित्र (Sketch Maps)** : ये मानचित्रों के रेखाचित्र होते हैं। इन मानचित्रों को आवश्यकतानुसार प्रयोग में लाया जा सकता है।

मानचित्र पढ़ाने के कौशल (Map Reading Skills) : सामाजिक विज्ञान शिक्षक का यह प्रथम कर्तव्य हो जाता है कि सामाजिक विज्ञान को पढ़ाते समय वह बालकों का ध्यान मानचित्रों की ओर आकर्षित करे और उन्हें उनका सदुपयोग सिखाए। इसलिए उन्हें मानचित्र पढ़ने के कौशलों से जरूर अवगत करवाया जाना चाहिए। मानचित्र पढ़ने के कौशल को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

(i) मानचित्र से परिचित होना और निर्देशों को नोट करना।

(ii) मानचित्र के संकेतों को पढ़ना।

(iii) सापेक्षिक स्थितियों को अभिव्यक्त करना।

(iv) मानचित्र के पैमाने या स्केल को जानना और फिर दूरियों को ज्ञात करना।

(v) किसी अच्छी प्रणाली या विधि की सहायता से मानचित्र पर स्थानों को ढूंढना।

(vi) विभिन्न प्रकार के मानचित्रों की तुलना करना और परिणामों को निकालना।

बालकों द्वारा मानचित्रों का कार्य (Map Work by the Students) : मानचित्र को शिक्षण के महत्त्वपूर्ण साधन के रूप में प्रयोग करने के अतिरिक्त विद्यार्थियों को भी मानचित्र बनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

इस प्रकार के रचनात्मक कार्य से जहां बालकों को आनंद की प्राप्ति होगी, वहां उनमें ज्ञान की वृद्धि होगी। क्योंकि मानचित्रों में रेखाओं, चिह्नों, रंगों तथा अनेक प्रकार के संकेतों का प्रयोग किया जाता है।

अतः मानचित्र तैयार करते समय इन सबका प्रयोग बड़ी सावधानी से किया जाना चाहिए। आरंभ में बालक सरल मानचित्र तैयार करे। फिर धीरे-धीरे उनमें अधिक विस्तार वाले जटिल मानचित्र तैयार करने की योग्यता आ जाएगी। मानचित्रों में दिखाए गए विभिन्न स्थानों की दूरी पैमाने के आधार पर दिखाई जा सकती है। नक्शे बनाते समय बालकों की अवस्था तथा उनके अनुभवों को ध्यान में रखना चाहिए।

मानचित्रों का उपयोग (Uses of Maps) : मानचित्र की उपयोगिता को निम्न तथ्यों से आसानी से समझा जा सकता है–

1. **पाठ को रुचिकर बनाने में सहायता प्रदान करना (Helpful in making lesson interesting)**–

मानचित्र शिक्षण को रुचिकर बनाने में सहायता प्रदान करते हैं क्योंकि इससे पाठ ठोस तथा यथार्थ की ओर अग्रसर होता है।

3. **उपयुक्त जानकारी (Appropriate knowledge)**–मानचित्र द्वारा पृथ्वी के धरातल से सम्बन्धित भागों को प्रदर्शित किया जा सकता है। कौन-सा स्थान किसी दूसरे स्थान से कितनी दूरी पर है? किसी विशेष फसल, खनिज संपदा आदि का वितरण देश या संसार की दृष्टि से कैसे होता है? इस प्रकार की बहुत सी बातों की जानकारी प्रदान करने की दृष्टि से मानचित्रों से उपयुक्त और कोई साधन नहीं।

4. **कठिन ज्ञान सरल बन जाता (Intricate knowledge becomes simple)**–मानचित्रों की सहायता से कठिन ज्ञान भी सरल बन जाता है, जैसे विभिन्न राज्यों की सीमाओं का ज्ञान, विभिन्न राजधानियों का ज्ञान आदि मानचित्रों द्वारा सरलता से कराया जा सकता है।

4. **जलवायु तथा वनस्पति की जानकारी के लिए (For getting knowledge of climate and vegetation)**–किसी भी स्थान की जलवायु, वनस्पति आदि की जानकारी मानचित्र द्वारा सरलता से प्राप्त की जा सकती है।

चयन और प्रयोग से संबंधित आवश्यक बातें (Essential Points Regarding Their Selection and Use) : मानचित्र का चयन और प्रयोग करते समय निम्न बातों का अवश्य ध्यान रखना चाहिए–

1. **स्थिति (Situation)**–मानचित्र को ऐसे स्थान पर प्रदर्शित किया जाना चाहिए, जिसे सभी छात्र ठीक ढंग से देख सकें। इसके साथ-साथ इसमें दिखाई जाने वाली बातों का चित्रण ऐसा होना चाहिए, जिससे कक्षा के सभी विद्यार्थी उसके द्वारा प्रदर्शित सभी बातों को अच्छी प्रकार से देख सकें।

2. **उपयुक्त चुनाव (Appropriate Selection)**–राजनैतिक, भौगोलिक तथा आर्थिक, जिस प्रकार के मानचित्र का उपयोग, जिस स्थिति में किया जाना है, उसका चुनाव किया जाना चाहिए।

3. **खुरदरी सतह (Matt surface)**–मानचित्र अच्छे गुण वाले होने चाहिए। इनकी सतह खुरदरी होनी चाहिए। यदि दीवार पर लटकाने वाले मानचित्रों की सतह चमकीली है तो कक्षा के कुछ भागों से यह चमकते मानचित्र विद्यार्थियों को नहीं दिखाई देंगे।

4. **अत्यधिक विस्तृत नहीं (Not too detailed)**–एक मानचित्र द्वारा सीमित उद्देश्यों की ही पूर्ति होनी चाहिए, बहुत सी बातों को एक साथ अपना उद्देश्य बना लेने पर मानचित्र इतना भीड़-भड़ाका वाला हो जाता है कि उसकी स्पष्टता और निश्चितता समाप्त हो जाती है। इसके साथ-साथ मानचित्र अधिक विस्तृत नहीं होना चाहिए।

5. **चयन (Selection)**–मानचित्र का चयन विद्यार्थियों की योग्यता, कक्षा विशेष के स्तर को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए।

6. **स्थलों को सही ढंग से प्रस्तुत किया जाना (The land should be correctly depicted)**–मानचित्र में ऐतिहासिक घटनाओं से सम्बन्धित स्थल सही ढंग से प्रदर्शित किए जाने चाहिए।

7. **मितव्ययता (Economy)**–मानचित्र सरल होना चाहिए तथा इसके साथ-साथ इसे अत्यधिक खर्चीला नहीं होना चाहिए।

8. **विषय-वस्तु का यथार्थता (Subject matter realistic)**–मानचित्र पर दी गई विषय-वस्तु यथार्थता, स्पष्टता और सूचनाओं की पर्याप्तता की कसौटी पर पूरी तथा खरी उतरनी चाहिए।

9. **उपयुक्त पैमाना (Appropriate Scale)**–मानचित्र का निर्माण करने का पैमाना विश्वसनीय होना चाहिए। संकेतों की दृष्टि से भी इसका उपयुक्त होना आवश्यक है। तभी दूरी तथा संख्यात्मक एवं गुणात्मक आंकड़ों का सही चित्रण हो सकेगा।

10. **अधिक रंग नहीं (Not too many colours)**–यद्यपि मानचित्रों में रंगों से बहुत सी बातें स्पष्ट हो जाती हैं फिर भी मानचित्रों में आवश्यकता से अधिक रंगों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

11. **रेखांकन उपयुक्त (Sketching appropriate)**–रेखांकन तथा सूचना व्यक्त करने वाले शब्दों या संकेतों की दृष्टि से भी मानचित्रों को उपयुक्त होना चाहिए।

12. **उपयुक्त संभाल (Appropriate upkeep)**–बार-बार प्रयोग [illegible] तथा संभाल कर रखने की दृष्टि से इनका उपयुक्त होना भी बहुत आवश्यक है ताकि वे जल्दी खराब न हो जाएं। इसके लिए एक तो मानचित्र केवल मजबूत ही खरीदने चाहिए ताकि बार-बार प्रयोग का भार सहन कर सकें।

13. **निर्माण (Preparation)**–जहाँ तक हो सके मानचित्रों का निर्माण छात्रों द्वारा ही अध्यापक की देख-रेख में किया जाना चाहिए। कक्षा में पूरे वितरण वाले मानचित्रों के स्थान पर मानचित्र खाकों का प्रयोग किया जना चाहिए, ताकि विद्यार्थियों में ज्ञार्नाजन और जिज्ञासा की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया जा सके और रटने की प्रवृत्ति को निरुसाहित किया जा सके।

14. **दीवार पर टाँगने सम्बन्धी सावधानी (Precaution regarding hanging on the wall)**–मानचित्रों को दीवार पर उतने समय तक ही टँगे रहना चाहिए, जितनी देर उनकी आवश्यकता हो। आवश्यकता से अधिक समय के लिए इसे दीवार पर टँगे नहीं रहना चाहिए। प्रसंग आने पर ही इसे दीवार पर लटकाना चाहिए।

मानचित्र की तैयारी (Preparation of Maps) : मानचित्रों की तैयारी कई विधियों से की जा सकती है, जिनमें से मुख्य निम्न हैं–

1. **एटलस (Atlas) :** मानचित्र प्रायः एटलस में बने होते हैं। कागज और कपड़े के बंने मानचित्र भी बाजार में उपलब्ध हैं।
2. **दीवारों पर बनाना (Preparation on Walls) :** मानचित्र दीवारों पर भी बनाए जा सकते हैं।
3. **स्वतंत्र चित्रण (Freehand Drawing) :** मानचित्र स्वतंत्र चित्रण की सहायता से भी बनाए जा सकते हैं, परंतु इसके लिए बहुत अभ्यास तथा प्रतिभा की आवश्यकता है।
4. **ट्रेसिंग (Tracing) :** ट्रेसिंग द्वारा भी मानचित्र सरलता से बनाए जा सकते हैं।
5. **प्रोजेक्टर द्वारा आकार बड़ा करना (Increasing the Size through Projector) :** यदि मौलिक मानचित्र छोटा है, तो प्रोजेक्ट की सहायता से इच्छानुसार बड़े आकार में प्रदर्शित किया जा सकता है।
6. **रुई से (From Cotton) :** उभरे हुए मानचित्र प्लाइवुड के तख्तों पर रुई व कागज की लुगदी लगाकर बनाए जा सकते हैं।

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि सामाजिक विज्ञान विषय के शिक्षण में मानचित्रों की उपयोगिता अन्य विषयों की अपेक्षा सर्वाधिक होती है। इतिहास, भूगोल, राजनीतिशास्त्र तथा अर्थशास्त्र जैसे विषयों को बिना मानचित्र की सहायता से पढ़ाना बालकों के ज्ञान प्राप्ति की दृष्टि से नुकसान करने वाला ही होता है। अतः एक शिक्षक को अपने विषय की पाठ्य-वस्तु तथा पढ़ाने की परिस्थितियों को ध्यान में रखकर उचित मानचित्र का चुनाव करने का प्रयत्न करना चाहिए।

5. सामुदायिक संसाधन (Community Resources)

यह कथन पूरी तरह से सत्य है कि समस्त अध्ययन स्कूल की चार दीवारी के भीतर नहीं हो सकता। सामाजिक विज्ञान विषय की विषय-वस्तु सामुदायिक जीवन के विभिन्न प्रकार के वातावरणों से निकली है। इसलिए सामाजिक विज्ञान से शिक्षण में सामुदायिक साधनों की उपयोगिता काफी बढ़ जाती है। शिक्षा के नवीनतम स्वरूप के अनुसार शिक्षा समुदाय में केन्द्रित होनी चाहिए। पूर्ण शिक्षा के लिए स्कूल और समाज न केवल एक-दूसरे के पूरक हैं अपितु एकीकृत भी हैं। सामाजिक विज्ञान विषय में स्कूल और समाज को एकीकृत करने के विशेष अवसर हैं। समुदाय के विभिन्न स्रोत सामाजिक विज्ञान के ज्ञान में वृद्धि कर सकते हैं। एक सुनियोजित कार्यक्रम स्कूल तथा समुदाय को एक-दूसरे के बहुत समीप ला सकता है।

समुदाय का अर्थ (Meaning of Community) : समुदाय के लिए अंग्रेजी में Community शब्द का प्रयोग होता है। यह शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है–Com और Munis। कॉम का अर्थ है–एक

(Together) और मुनीज का अर्थ है—सेवा करना। इस प्रकार इन दोनों शब्दों से मिलकर बने munity शब्द का अर्थ हुआ—एक साथ सेवा करना। साधारण शब्दों में समुदाय का अर्थ व्यक्तियों के ऐसे समूह से लिया जाता है, जिसके सदस्यों में परस्पर सेवा भावना होती है तथा जो हर स्थिति में एक दूसरे का सहयोग करने के लिए तैयार रहते हैं। ऑगबर्न तथा निमकॉफ के अनुसार, **"किसी सीमित क्षेत्र अर्थात् सामाजिक जीवन के संपूर्ण संगठन को समुदाय कहा जाता है।"** अर्थात् समुदाय के सभी सदस्य निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में रहते हुए सामान्य जीवन व्यतीत करते हैं। ब्राउनेल के अनुसार, **"समुदाय से अभिप्राय उस समूह से है, जिसमें अनेक प्रकार के व्यक्ति विभिन्न क्षमताओं तथा योग्यताओं से युक्त होकर भाइयों की भांति मिलकर साथ रहते हैं।"** संक्षेप में कहा जा सकता है कि समुदाय व्यक्तियों का एक समूह है, जिसके सदस्य एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में निवास करते हैं, इसकी अपनी एक जीवन-शैली होती है तथा इसके सभी सदस्यों में परस्पर सहयोग एवं सेवा भाव होता है।

महत्त्वपूर्ण सामुदायिक स्रोत (Important Community Resource) : प्रत्येक समुदाय में अनेक ऐसे स्रोत हैं, जिनका प्रयोग शैक्षणिक उद्देश्यों के लिए किया जाता है। ऐसे स्रोतों की विस्तृत जानकारी अध्यापक तथा छात्र को अवश्य प्राप्त होनी चाहिए। इस तरह के स्रोतों को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है—

(i) महत्त्वपूर्ण सामुदायिक स्रोतों में सबसे पहला स्थान भौगोलिक महत्त्व के स्थानों का होता है। इस तरह के स्थान स्कूलों के समीप ही होते हैं, जैसे—कृषि, खनन, रेलवे स्टेशन, कारखाने, मिल व हवाई अड्डे आदि।

(ii) सामुदायिक स्रोतों की दृष्टि से ऐतिहासिक महत्त्व वाले स्थानों का भी बहुत महत्त्व होता है जैसे—किले, स्तंभ, दृष्टि, मीनार, मस्जिद, मंदिर, गिरजाघर, पुराने शासकीय व प्रशासकीय भवन, पुराने रिकार्ड व शिलालेख इत्यादि।

(iii) अजायबघर, चिड़ियाघर, विश्वविद्यालय, रेडियो स्टेशन, कला विभाग, स्कूल, कॉलेज, स्काऊट, गर्ल गाइड संगठन, इम्पोरियम तथा समाचार-पत्रों के कार्यालय सांस्कृतिक महत्त्व के स्थानों के अंतर्गत आते हैं, इनकी गिनती भी महत्त्वपूर्ण सामुदायिक स्रोतों के रूप में की जाती है।

(iv) आर्थिक महत्त्व के स्थानों में मंडिया, बैंक, ईंटों के भट्टे, डेयरी, व्यापारिक केन्द्र, रेलवे जंक्शन, पोस्ट व टेलीग्राफ कार्यालय, कृषि फार्म व छापेखाने इत्यादि हैं। इनको भी महत्त्वपूर्ण सामुदायिक स्रोतों के अन्तर्गत रखा जाता है।

(v) वैज्ञानिक महत्त्व के स्थानों में प्रयोगशालाएं, थर्मल, हाइड्रो शक्ति पैदा करने वाले स्टेशन, वर्कशाप, विज्ञान भवन, इंजीनियरिंग कॉलेज आदि आते हैं।

(vi) महत्त्वपूर्ण सामुदायिक स्रोतों में सरकारी भवनों का भी विशेष योगदान होता है। पंचायत घर, नगरपालिकाएं, थाने, विधानसभा तथा संसद-भवन, न्यायालय, समाज कल्याण की संस्थाएं, जल-वितरण केन्द्र व अस्पताल इसी तरह के स्रोत हैं।

(vii) प्रत्येक समाज में कुछ रीति-रिवाज, विश्वास, परम्पराएं, आस्थाएं, अभिवृत्तियां आदि होती हैं, जिनका प्रयोग कोई भी स्कूल प्रभावशाली शिक्षा को क्रियात्मक रूप देने के लिए कर सकता है।

महत्त्व या उपयोगिता (Importance or Utility) : सामाजिक विज्ञान शिक्षण में सामुदायिक साधनों का बड़ा भारी महत्त्व है। पुस्तकीय शिक्षा की आलोचना करते हुए शिक्षा शास्त्री इस बात को स्वीकार करते हैं कि समुदाय ही शिक्षा प्रदान करने का वास्तविक विद्यालय है। समुदाय द्वारा बालक ऐसे अनुभव प्राप्त कर सकते हैं, जिनका शैक्षिक दृष्टिकोण से बड़ा महत्त्व है। सामुदायिक साधनों की उपयोगिता अथवा महत्त्व को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है—

(i) सामुदायिक जीवन में व्याप्त सामाजिक बुराइयों को बालक स्वयं अपनी आंखों से देखते हैं। अध्यापक इन बुराइयों के विरुद्ध बालक का मार्गदर्शन कर सकता है। समाज में रहकर ही इन बुराइयों को समाप्त किया जा सकता है।

(ii) समुदाय से प्राप्त ज्ञान की प्रकृति स्थित होती है अर्थात् यह ज्ञान सदा बालक के काम आता है।
(iii) बालक में अपनेपन की भावना समाज में रहने से ही आती है, इसलिए वे इस बात को जान लेते हैं कि समुदाय की भलाई के लिए उन्हें भी योगदान देना चाहिए।
(iv) अधिगम ज्ञान का प्रधान स्रोत इंद्रियों द्वारा प्राप्त अनुभव होता है।
(v) बच्चे जब सामुदायिक जीवन व उसकी क्रियाओं को देखते हैं तो वह पहले ही अपने आपको भविष्य के जीवन के लिए तैयार करने का प्रयास करते हैं।
(vi) सामुदायिक स्रोतों से प्राप्त ज्ञान कल्पना शक्ति को जाग्रत करता है और बालकों में अवलोकन तथा विश्लेषण आदि की शक्ति का विकास करता है।
(vii) मंद बुद्धि के बालकों और कमजोर छात्रों के लिए तो समुदाय द्वारा प्रदत्त शिक्षा बहुत मूल्यवान होती है।
(viii) सामुदायिक स्रोतों को प्राप्त ज्ञान में स्पष्ट होती है।
(ix) बालक ज्ञान प्रत्यक्ष अनुभव से प्राप्त करते हैं, इसलिए अधिगम में उनकी रुचि निरंतर बनी रहती है।
(x) सामुदायिक जीवन के अध्ययन के विषय को जब सामाजिक विज्ञान के पाठ्यक्रम में शामिल किया जाता है तो यह पाठ्यक्रम की ओर भी ज्यादा प्रभावशाली बनाने में सहायता करता है।

अंत में हम यही कह सकते हैं कि स्कूल और समुदाय द्वारा एक अच्छा योजनाबद्ध कार्यक्रम सामाजिक विज्ञान के अधिगम को अधिक प्रभावशाली बना सकता है।

सामुदायिक साधनों का शैक्षिक उपयोग (Educational Utilization of Community Resources) : विद्यालय तथा समाज को एक-दूसरे के समीप लाकर ही सामाजिक विज्ञान शिक्षण को सामुदायिक साधनों एवं स्रोतों से प्राप्त अनुभवों के साथ जोड़ा जा सकता है। इसके लिए समय-समय पर विद्यालय में ऐसे कार्यक्रमों या उत्सवों का आयोजन किया जाए, जिससे समुदाय व स्कूल को आपस में जोड़ा जा सके। इसी तरह विद्यालय को भी समाज में जाकर अपनी भूमिका का निर्वाह करना चाहिए। इसमें दोनों के बीच समन्वय तभी होगा, जब दोनों मिलकर काम करेंगे। सामुदायिक साधनों या स्रोतों के शैक्षणिक उपयोग की दो विधियां हैं—पहली स्कूल को ही समुदाय के समीप ले जाना तथा दूसरी, समुदाय को स्कूल के समीप लाना। इन दोनों विधियों का संक्षिप्त विवरण निम्न है—

(I) स्कूल को समुदाय में ले आना (Bringing school to the community)—वास्तविक अवलोकन की तुलना कोई दूसरा साधन नहीं कर सकता। जब तक विद्यार्थी को समुदाय में न ले जाया जाए उन्हें समुदाय के क्रियाकलापों का कुछ भी पता नहीं चल सकता। इसलिए सामाजिक विज्ञान पाठ्यक्रम में भ्रमण (Field trips and excursions) का बहुत बड़ा स्थान है। इसके अतिरिक्त सर्वेक्षण (Surveys) तथा सेवा आयोजनों द्वारा भी स्कूल को समुदाय में लाया जा सकता है। इन सब क्रियाओं का विस्तारपूर्वक अध्ययन इस प्रकार है—

1. भ्रमण (Excursion, Tours)—भ्रमण सामाजिक विज्ञान कार्यक्रम का एक आवश्यक भाग है। भ्रमण तभी उद्देश्यपूर्ण हो सकते हैं यदि उनका चुनाव हाथ में ली हुई समस्या के अनुसार किया जाता है। भ्रमण का आयोजन करने से पहले इसकी योजना, संगठन और कार्यान्विति की ओर पूरा ध्यान देना चाहिए। भ्रमण पर जाने से पहले विद्यार्थियों के साथ इसके उद्देश्यों के बारे में बहस कर लेनी चाहिए। यदि जिस स्थान पर जाना है उसके विवरण की फिल्म उपलब्ध हो जाए तो उसे छात्रों को दिखाना चाहिए ताकि उनकी जिज्ञासा जाग्रत हो। भ्रमण के पूरा होने पर उसके बारे में विचार-विमर्श करना चाहिए। फिर व्यय किए हुए धन का लेखा-जोखा करके इसकी रिपोर्ट तैयार कर लेनी चाहिए।

2. सामुदायिक सर्वेक्षण (Community surveys)—यदि समाज के किसी एक क्षेत्र का विशिष्ट रूप से अध्ययन करना हो तो सामुदायिक सर्वेक्षण बहुत काम आ सकते हैं। इनसे लोगों की दैनिक क्रियाओं का

चलता है। समुदाय को कौन-कौन सी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है? समाज में कौन-कौन से झुकाव आ रहे हैं? इन सब बातों का पता सर्वेक्षणों द्वारा लगाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त विद्यार्थियों को समुदाय में जाने, उनसे मिलने, उनकी समस्याओं को समझने तथा समाधान करने के उपाय करने का अवसर मिलता है। विद्यार्थी इस बात को महसूस करने लग जाते हैं कि हम सब एक दूसरे पर निर्भर हैं। इसलिए उनमें सामान्य नागरिक सहयोग की भावना बढ़ती है। सर्वेक्षण समुदाय के किसी भी पहलू के बारे में किए जा सकते हैं। जैसे इसके रीति-रिवाज, प्रथाएँ, आर्थिक समस्याएँ जैसे बेरोजगारी, कम रोजगारी, बढ़ती हुई जनसंख्या आदि, सामाजिक समस्याएँ जैसे दहेज प्रथा तथा छूत-छात आदि, शैक्षणिक समस्याएँ जैसे स्कूल छोड़ने वाले बच्चे (School drop outs) तथा प्रौढ़ निरक्षरता (Adult illiteracy) आदि-आदि।

3. **समुदाय सेवा का आयोजन (Organisation of community services)**–समुदाय के प्रति विद्यार्थियों द्वारा सेवा को दो भागों में बाँटा जा सकता है–

(i) **सामान्य समय में सेवा (Service during normal times)**–विद्यार्थी छुट्टियों के दिनों में समुदाय में शिविर (Camps) लगाकर समुदाय की सेवा कर सकते हैं। वे गलियों, नालियों, कुओं तथा अपने आस-पड़ोस के स्थानों की सफाई का कार्य कर सकते हैं। प्रौढ़ शिक्षा का आयोजन कर सकते हैं। वृक्ष लगाकर समुदाय के वातावरण को सुन्दर बना सकते हैं। अस्पताल में जाकर रोगियों की सेवा कर सकते हैं, उनके पत्र लिख सकते हैं। उन्हें समाचार पत्र या दूसरी पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ कर सुना सकते हैं। शिक्षाप्रद नाटकों का आयोजन करके समुदाय का जहाँ एक ओर मनोरंजन कर सकते हैं तो दूसरी ओर उन्हें शिक्षा भी दे सकते हैं। लड़कियाँ शिविर में जाकर महिलाओं को परिवार नियोजन के लाभ समझा सकती हैं। छोटी आयु में विवाह, दहेज आदि के विरुद्ध प्रचार कर सकती हैं। इस प्रकार के कार्यक्रमों से समुदाय तथा स्कूल के सम्बन्धों में घनिष्ठता आ सकती हैं।

(ii) **आपातकालीन सेवा (Service during emergency)**–कई बार समुदाय में प्राकृतिक प्रकोप (Natural calamities) आ सकते हैं, जैसे बाढ़ (Floods), महामारी (Epidemics) भूचाल (Earth quake) आदि-आदि। ऐसे अवसरों पर छात्र अपने अध्यापक के नेतृत्व में लोगों के लिए सहायता कार्यों का आयोजन कर सकते हैं, जैसे–धन और कपड़े आदि इकट्ठा करके बाँटना, रोगियों की तीमारदारी करना, बाढ़ में फँसे हुए लोगों को बाहर निकालना आदि-आदि। इन सब कार्यों से समुदाय तथा स्कूल एक दूसरे के बहुत समीप आ सकते हैं और तभी शिक्षा अर्थ-पूर्ण बनेगी।

4. **साक्षात्कार (Interviews)**–बच्चों द्वारा समुदाय के विभिन्न लोगों से साक्षात्कार करके विभिन्न प्रकार की सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती हैं। यह प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्ति का अमोल साधन बन सकता है। साथ ही समुदाय के लोग इनसे साहित्य तथा श्रव्य-दृश्य सामग्री पाकर महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

5. **कल्बों का संगठन (Organisation of clubs)**–छात्र समुदाय में कई प्रकार के कल्ब स्थापित कर सकते हैं, जैसे सफाई कल्ब, शिक्षा कल्ब, स्वास्थ्य कल्ब आदि-आदि। इस प्रकार के आयोजनों से आस-पास के वातावरण प्रत्यक्ष रूप से ज्ञान प्राप्त होता है।

(II) समुदायों को विद्यालयों के निकट लाना (Bringing community near to schools)–निम्नलिखित उपायों के द्वारा समुदाय और स्कूल एक-दूसरे के समीप आ सकते हैं–

1. **अभिभावक शिक्षक संघ (Parent-Teacher association)**–विद्यालयों को समाज के निकट लाने के लिए विद्यालयों में अभिभावक-शिक्षक संघ स्थापित किए जाने चाहिए। ये समुदाय के साधन के रूप में शिक्षा के क्षेत्र में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान निम्नलिखित रूप में दे सकते हैं–

(क) विद्यालय किसी भी प्रकरण के सम्बन्ध में अभिभावकों से प्रश्नों के द्वारा सूचनाएँ इकट्ठी कर सकते हैं।

(ख) जो प्रकरण समुदाय से सम्बन्धित हों उसे पढ़ाने के लिए अभिभावकों को उस समय विद्यालय में आमन्त्रित किया जाए। अभिभावक छात्रों के सामने प्रकरण से सम्बन्धित तथ्यों को रखें।

2. सामूहिक सभाएँ तथा प्रार्थना (General Assembly and prayer)–प्रत्येक विद्यालय में अध्ययन के कार्यक्रम व कक्षाएँ आरम्भ होने से पहले 15 मिनट सामूहिक सभा व प्रार्थना के होने चाहिए। इस सभा में नैतिकता, राष्ट्रीय एकता, देश प्रेम व अन्य आदर्शों की बातों को विद्यार्थियों को बताना चाहिए। प्रातःकालीन वंदना, कार्यक्रम में ईश वंदना के पश्चात् विभिन्न महापुरुषों के भाषणों को स्थान दिया जाना चाहिए तथा समुदाय के विभिन्न क्षेत्रों के बारे में बच्चों को जानकारी दी जानी चाहिए।

3. सदस्यों को आमन्त्रण (Invitation to the members of the community)– विद्यालय सामुदायिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करने वाले व्यक्तियों को समय-समय पर अपने विद्यालय में आमन्त्रित करना चाहिए। इसमें प्रसिद्ध समाज सेवक, डॉक्टर, व्यापारी, वकील आदि जो सामाजिक तथ्यों पर प्रकाश डालकर विद्यार्थियों को सामाजिकता के विषय में जानकारी दें। इससे बच्चों में अधिकारों व कर्तव्यों का आभास होगा।

4. उत्सव, फिल्में व प्रदर्शनियाँ (Festivals, Films and Exhibitions)–विद्यालय द्वारा समुदाय सदस्यों के लिए समय-समय पर उत्सवों, प्रदर्शनियों व फिल्मों का भी आयोजन किया जाना चाहिए क्योंकि इनके द्वारा उन्हें उपयोगी ज्ञान अर्जित होता है। विद्यालय विभिन्न विषयों पर प्रदर्शनियाँ आयोजित करके समाज व समुदाय का सहयोग प्राप्त कर सकता है।

5. सामुदायिक जीवन की अनेकों क्रियाओं का आयोजन करना (To organise many community life activities)–समुदाय को स्कूल के समीप लाने के लिए विद्यालयों में सामुदायिक जीवन से सम्बन्धित अनेकों क्रियाओं का आयोजन करना चाहिए, जिससे छात्र सामाजिक जीवन की विभिन्न क्षेत्रों के विषय में इसके माध्यम से जानकारी प्राप्त कर सकें। इसके संचालन और आयोजन में समुदाय के लोगों का सहयोग अवश्य लिया जाना चाहिए।

6. मेलों तथा उत्सवों का आयोजन (Celebration of fairs and festivals)–विभिन्न स्थानीय मेलों तथा त्योहारों को विद्यालयों में मना कर समुदाय को सामुदायिक विद्यालयों के काफी निकट लाया जा सकता है। इसको मनाने के लिए स्थानीय समुदाय को भी आमन्त्रित किया जाना चाहिए। इससे विद्यालयों में सामाजिक भावना का विकास होगा।

7. सामुदायिक समस्याओं का समाधान (Solution of community problems)– सामुदायिक विद्यालयों के माध्यम से सामुदायिक समस्याओं का समाधान ढूँढा जा सकता है। इसकी सहायता से विद्यार्थी सामुदायिक जीवन की वास्तविकता को सामने पाकर उनसे कुछ सीखेंगे। ग्रामीण स्कूलों की अपनी ही समस्याएँ होती हैं। समुदाय के लोगों से उन समस्याओं का समाधान कराया जा सकता है।

इन विधियों के द्वारा समाज विद्यालय से और विद्यालय समुदाय से दूर नहीं रह पाएगा। विद्यालयों में सामुदायिक जीवन की व्यवस्था के लिए समुदाय और विद्यालय का आपसी घनिष्ठ सम्बन्ध होना चाहिए। समाज विद्यालयों के द्वारा अपनी आवश्यकताओं को पूरा करना चाहता है, क्योंकि आज विद्यालय ने लघु समाज का रूप तो धारण कर ही लिया है साथ ही विद्यालय ही देश का सही अर्थों में निर्माता होता है। आज वह समय है जब विद्यालय अकेले कुछ नहीं कर सकता। अतः समाज का सहयोग प्राप्त करना उसके लिए नितान्त आवश्यक है।

6. मानचित्रावली
(Atlas)

एटलस सामाजिक विज्ञान शिक्षण में एक महत्त्वपूर्ण शिक्षण अधिगम सामग्री की भूमिका निभाता है सरल व स्पष्ट भाषा में भिन्न-भिन्न प्रकार के मानचित्रों के संग्रह को 'एटलस' कहा जाता है। मानचित्रों के इस तरह के संग्रह (एटलस) में सामाजिक विज्ञान के उपविषयों (इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, नागरिकशास्त्र से संबंधित तरह-तरह के मानचित्र होते हैं। एटलस सामाजिक विज्ञान के उपविषयों से संबंधित विविध पहलुओं और प्रकरणों के विषय में जानकारी उपलब्ध करवाने के सबसे उपयोगी शैक्षिक साधनों में से एक

सामाजिक विज्ञान विषय के अध्यापक के लिए यह इतना उपयोगी है कि इसे 'शिक्षक का बायां हाथ' भी संबोधित किया जाता है। सामाजिक विज्ञान विषय के अंतर्गत आने वाली पाठ्य-सामग्री, विभिन्न महाद्वीपों एवं देशों की वास्तविक स्थिति, भौतिक विशेषताएं (पर्वत, नदियां, जलवायु, सागर, भाग, मरुस्थलीय भाग, पठार) प्राकृतिक साधन (खनिज, भूमि, जल), विभिन्न राजाओं द्वारा शासित की सीमाओं, जनसंख्या वितरण, राजनीतिक परिदृश्य, रेलमार्ग, वायुमार्ग, सड़क मार्ग, आर्थिक उत्पादन तेल, आदि की स्थिति को स्पष्ट करने में एटलस सामाजिक विज्ञान शिक्षक की काफी सहायता करता

एटलस की सहायता से कठिन से कठिन तथ्य को सरल व स्पष्ट बनाया जा सकता है। एटलस के हिन्दी शब्दार शब्द के रूप में हम 'मानचित्रावली' शब्द का भी प्रयोग कर सकते हैं। छोटी कक्षाओं में प्रायः एक मानचित्रावली में सामाजिक विज्ञान से संबंधित विभिन्न प्रकार के मानचित्रों को एक साथ दिया जाता है, ज्यों-ज्यों कक्षा स्तर बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे मानचित्रावली भी कई श्रेणियों में विभाजित होती जाती है। मानचित्रावलियों में दिए गए मानचित्रों को निम्न श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है—

1. **ऐतिहासिक मानचित्रावली (Historical Atlas) :** इस तरह की मानचित्रावलियों में विभिन्न समय के शासकों के राज्य विस्तार तथा सीमाओं को मुख्य रूप से दर्शाया जाता है। मौर्य साम्राज्य का विस्तार, गुप्त साम्राज्य का विस्तार, हर्षवर्धन के राज्य का विस्तार, सल्तनतकालीन साम्राज्य का विस्तार, अकबर के अधीन मुगल साम्राज्य, ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन भारत आदि इस तरह के उदाहरण हैं।
2. **भौगोलिक मानचित्रावली (Geographical Atlas) :** इस तरह की मानचित्रावलियों में मुख्य रूप से पृथ्वी पर पाई जाने वाली भौतिक परिस्थितियों व प्राकृतिक संसाधनों को प्रदर्शित किया जाता है। महाद्वीप, महासागर, अक्षांश एवं देशांतर रेखाएं, मकर तथा विषुवत रेखाएं, वनस्पतियां, खनिज, वन्यप्राणी, जल, वर्षा, मिट्टी, कृषि, पहाड़, नदियां, समुद्रीय जल धाराएं, वन, पठार आदि इसी तरह के उदाहरण हैं।
3. **राजनीतिक मानचित्रावली (Political Atlas) :** सामाजिक विज्ञान शिक्षण में राजनीति मानचित्रावली की उपयोगिता को किसी भी तरह से कम करके नहीं आंका जा सकता है। विभिन्न देशों की भौतिक स्थिति, उनकी राजधानियों, प्रशासनिक एवं शासकीय संस्थाओं आदि की सरल व स्पष्ट जानकारी राजनीतिक मानचित्रावली से ही प्राप्त हो सकती है।
4. **आर्थिक मानचित्रावली (Economic Atlas) :** आज के समय में आर्थिक मानचित्रावली का महत्त्व पहले से अधिक हो गया है। पहले इससे संबंधित मानचित्र राजनीतिक, ऐतिहासिक व भौगोलिक मानचित्रावलियों में ही सम्मिलित कर लिए जाते थे, परंतु अब इसका अपना अलग वजूद है। आर्थिक संसाधन, उत्पादन, रोजगार, यातायात के साधन, सड़कें, मण्डियां, नगर, कस्बे, मॉल, कॉम्पलेक्स आदि विषयों को इस श्रेणी में रखा जा सकता है।
5. **सामाजिक मानचित्रावली (Social Atlas) :** विभिन्न देशों व राज्यों की जनसंख्या, साक्षरता, भाषा, धर्म आदि संबंधी आंकड़े सामाजिक मानचित्रावली द्वारा ही उपलब्ध करवाए जाते हैं। इस दृष्टि से इसकी उपयोगिता को भी कम करके नहीं आंका जा सकता है।

मानचित्रावली के अर्थ व प्रकारों से संबंधित उपरोक्त तथ्यों का अध्ययन करने के बाद एक बात स्पष्ट रूप से कही जा सकती है कि बिना मानचित्रावली सामाजिक विज्ञान विषय का शिक्षण कार्य करने वाला अध्यापक अधूरा है। ज्ञान को पूर्ण, सरल व स्पष्ट बनाने में मानचित्रावली से बेहतर शिक्षण अधिगम सामग्री सामाजिक विज्ञान विषय के लिए हो नहीं सकती। इसके प्रयोग से बालक को विषय संबंधी तथ्यात्मक आंकड़ों का ज्ञान व समझ प्राप्त होती है। एन.सी.ई.आर.टी. (NCERT) में इनकी उपयोगिता को देखते हुए तथा विद्यालय स्तर पर इस शिक्षण अधिगम सामग्री के उपयोग को प्रोत्साहन देने के लिए मैप मैट्रिक्स (Map

Matrix) नामक पुस्तकों का प्रकाशन करवाया है। सामाजिक विज्ञान के पुस्तकालय में मानचित्रावली को अवश्य ही स्थान दिया जाना चाहिए।

7. ई–संसाधन (E-resources)

इलेक्ट्रोनिक तथा कम्प्यूटर से होने वाले तकनीकी विकास ने शिक्षण अधिगम सामग्री का स्वरूप पूर्णत: बदल दिया है। आज का युग सूचना क्रांति का है। इसलिए शिक्षण अधिगम सामग्री में इलेक्ट्रोनिक तथा कम्प्यूटर तकनीक पर आधारित सामग्री की उपयोगिता निरंतर बढ़ती जा रही है। आज शिक्षकों को अपने शिक्षण तथा बालकों को अधिगम में मदद पहुंचाने के लिए अनेकों ऐसे विकसित कम्प्यूटरीकृत साधन हासिल हो गए, जिनसे उनके ज्ञान प्राप्त करने के कार्य को एक उपयोगी दिशा और दशा प्राप्त हो सकती है। इस तरह के साधनों में **ब्लॉग** (Blog), **वर्ल्ड वाइड वेब** (world wide web) तथा **सोशल नेटवर्किंग** (Social networking) जैसे कम्प्यूटरीकृत साधन प्रमुख रूप से शामिल हैं। इनके विविध पहलुओं को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

1. **ब्लॉग (Blog) :** आज हमारी सामान्य जिंदगी में भी फेसबुक, व्हटसप, ट्वीटर तथा ब्लॉग जैसे कुछ ऐसे शब्द हैं, जिनका पता नहीं दिन में हम कितनी बार इस्तेमाल करते हैं। इन शब्दों की उपयोगिता इस बात से समझी जा सकती है कि इनका इस्तेमाल बच्चे से लेकर बड़ों तक, शिक्षित से लेकर अशिक्षित तक तथा अमीर से लेकर गरीब तक आम हो गया है। इसलिए शिक्षा के क्षेत्र में भी इनका लाभ उठाया जा सकता है। शैक्षिक कार्यों में उन्नति हेतु ब्लॉग का प्रयोग काफी उपयोगी साबित हो सकता है। ब्लॉग क्रियात्मक दृष्टि से एक ऐसी बेवसाइट का भाग होता है, जिसे किसी समूह, संस्था या व्यक्ति विशेष द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है। इसके माध्यम से सूचनाओं का सरलता से आदान-प्रदान किया जा सकता है। शाब्दिक अर्थ के अनुसार ब्लॉग शब्द मूल शब्द वेबलॉग (Weblag) का बिगड़ा हुआ छोटा रूप है। इस शब्द का अर्थ होता है–"वेब पर व्यक्त दृष्टान्तों, विचारों तथा वृत्तांतों का क्रमबद्ध विवरण।" ई. संसाधन के अन्तर्गत आने वाले इन कम्प्यूटरीकृत साधनों को एक व्यक्ति; समूह या संस्था द्वारा स्थापित वं नियंत्रित किया जा सकता है। इसकी खुशी यह है कि बनने वाला इसे अपनी निजी डेयरी के रूप में भी इस्तेमाल कर सकता है। इसमें चित्र, फोटोग्राफ, वीडियो, ऑडियो तथा मल्टीमिडिया आदि सभी प्रकार की सामग्री का आदान-प्रदान किया जा सकता है। इसमें नियमित रूप से नई सामग्री जोड़ी जाती है, तथा पुरानी सामग्री नीचे या पीछे चली जाती है।

शिक्षा में उपयोगिता (Utility in Education) : एडूब्लॉग से हमारा अभिप्राय उस ब्लॉग से है, जिसका संबंध सीधा तथा स्पष्ट रूप से शिक्षा से होता है। अध्यापक द्वारा शिक्षण के लिए बनाए ब्लॉग, शैक्षिक नीति आयोगों के ब्लॉग, कक्षा अनुदेशन के लिए तैयार ब्लॉगों को शैक्षिक ब्लॉग का नाम दिया जाता है। ब्लॉग बनाने वाले को ब्लॉगर्स (Blagger) कहा जाता है। आज शिक्षा के क्षेत्र में इन ब्लॉगों का प्रयोग तथा उनकी लोकप्रियता निरंतर बढ़ती जा रही है। शिक्षा के क्षेत्र में इन ब्लॉगों की उपयोगिता को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

(i) बालकों के माता-पिता या अभिभावकों के साथ सम्पर्क स्थापित करने में ये शैक्षिक ब्लॉग अध्यापक व विद्यालय की काफी सहायता करते हैं।

(ii) इसके माध्यम से अध्यापक महत्त्वपूर्ण सूचनाओं को अपने साथियों, बालकों तथा उनके अभिभावकों के साथ बांट सकता है।

(iii) किसी विशिष्ट विषय को पढ़ाने में ब्लॉग अध्यापक की काफी सहायता करते हैं।

(iv) ब्लॉग शिक्षकों के लिए एक ऐसा उपकरण है, जिसमें शैक्षिक सूचनाओं का आसानी से आदान-प्रदान किया जा सकता है।

(v) इस कम्प्यूटरीकृंती उपकरण की सहायता से विविध विचारों तथा उपकरणों का सरलता से पत लगाया जा सकता है।

(vi) माता-पिता तथा अभिभावकों को बालकों के विषय में सूचना देने व उनका सहयोग प्राप्त करने में यह शैक्षिक उपकरण काफी लाभदायक है।

(vii) स्कूल स्तर पर चलाई जाने वाली बाल-कल्याणकारी योजनाओं से शिक्षकों, बालकों व अभिभावकों को अवगत करवाने में यह शैक्षिक उपकरण हमारी काफी सहायता करते हैं।

(viii) इसके माध्यम से किया गया सम्प्रेषण बालकों, शिक्षकों तथा अभिभावकों के लिए अच्छा रहता है।

(ix) विद्यार्थियों के साथ अन्तःक्रिया और सम्प्रेषण में वृद्धि करने में भी यह शैक्षिक उपकरण हमारी काफी सहायता करता है।

(x) विश्व के सभी देशों में बालक इससे लेखन व सम्प्रेषण कौशल का विकास कर सकते हैं।

(xi) कक्षा-शिक्षण की पूर्व तैयारी एवं बालकों से संवाद बनाने के लिए भी इसका उपयोग किया जा सकता है।

(xii) इस ब्लॉग का सबसे बड़ा फायदा यह है कि बालक इस पर सामूहिक रूप से सम्प्रेषण करते हुए अपने विचार व्यक्त कर सकते हैं।

(xiii) ब्लॉग बालकों को उनके अपने अधिगम पर स्वामित्व प्रदान करते हैं।

(xiv) इससे बालकों को अपनी अलग पहचान बनाने में सहायता मिलती है।

(xv) इसकी सहायता से बालक निरंतर अध्यापकों के सम्पर्क में रहते हैं।

2. **वर्ल्ड वाइड वेब (world wide web)** : सूचना क्रांति के इस युग में इन्टरनेट की उच्च स्तरीय सेवाओं को प्रस्तुत करने में वर्ल्ड वाइड वेब हमारी काफी सहायता करता है। वर्ल्ड वाइड वेब को संक्षेप में www या वेब (web) कहा जाता है। तकनीकी दृष्टि से यह सर्वरों (Servers) के रूप में स्रोतों को उपलब्ध कराने वाली एक बहुत बड़ी प्रणाली है। यह विश्व के प्रत्येक कोने में बैठे हुए सभी प्रयोगकर्ताओं को नेट पर सभी प्रकार की सूचनाएं और ज्ञान प्रदान करने का पूरा सामर्थ्य रखती है। शैक्षिक वेबसाइट से अभिप्राय उस वेबसाइट से है, जिस पर शैक्षणिक विषयों से संबंधित पूर्ण सूचनाओं तथा ज्ञान का भंडार उपलब्ध रहता है। इन्टरनेट पर इस तरह की वेबसाइटों की भरमार रहती है। शिक्षण-अधिगम की क्रिया को क्रियात्मक रूप प्रदान करने में यह कम्प्यूटरीकृत उपकरण हमारी सहायता करता है। शैक्षिक वेबसाइट का चुनाव करना इतना सरल नहीं होता है क्योंकि इन्टरनेट पर यह असंख्य में उपलब्ध हैं। सामाजिक विज्ञान के शिक्षण में सहायक कुछ वेबसाइट निम्न हैं–

(i) शिक्षकों व बालकों को मानचित्रावली (Atlas) संबंधी सम्पूर्ण जानकारियां http:/www.graphicmaps.com नामक वेबसाइट से प्राप्त हो सकती है। मानचित्रों को समझने में यह बालकों को काफी सहायता करती है।

(ii) बालकों को राजनीतिक शब्दावली, सीमा का विस्तार, राजधानियां व अन्य प्रशासनिक संस्थाओं के विषय में जानकारी देने वाली वेब साइट http:/www.siteatlas.com/atlas/polatlas/polattas. htm है। यह विश्व की राजनीतिक मानचित्रावली के नाम से प्रसिद्ध है।

(iii) शैक्षिक उद्देश्यों के व्यावहारिक शब्दावली को समझाने वाली वेब साइट http:/www.geocities/com/eltsqu/cognitive.htm है। इससे उद्देश्यों की व्यावहारिक शब्दावली को समझने में काफी सहायता मिलती है।

(iv) http://commhum.meeneb.edu/philos/learn theo. htm नामक वेब साइट से हमें अधिगम सिद्धांतों की उपयोगी जानकारी प्राप्त होती है। यह शिक्षक तथा बालक दोनों के लिए ही समान रूप से उपयोगी होता है।

(v) नेशनल केरीक्यूलम फ्रेमवर्क-2005 की जानकारी http:/epunits.du.ac in/9/01/NCERT.doc नामक वेब साइट पर उपलब्ध है। इस साइट पर माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम

के निर्माण व नियोजन के विषय में राष्ट्रीय पाठ्यक्रम कार्य सम्मेलन-2001 के सुझावों को दिया गया है।

(vi) http://www.health library.com.reading/principles/chas/chas.htm नामक वेब साइट से सूक्ष्म शिक्षण संबंधी जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

(vii) www.Lesson plan 2.com नामक वेब साइट पर पाठ-योजनाओं से संबंधित विविध तथ्यों को देखा जा सकता है।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि सूचना क्रांति ने शिक्षण अधिगम सामग्री के परम्परागत स्वरूप को काफी हद तक बदल दिया है। अब ब्लॉग और वेब जैसे आधुनिक कम्प्यूटरीकृत शिक्षण साधनों का महत्त्व बढ़ता जा रहा है। इनसे बालकों को व्यक्तिगत व सामूहिक दोनों प्रकार का शिक्षण दिया जा सकता है। आज इंटरनेट पर शिक्षा के विविध पहलुओं से संबंधित इतनी ज्यादा जानकारी उपलब्ध है कि उनका चुनाव करना भी आसान नहीं है। इसलिए अध्यापक का यह कर्तव्य बनता है कि वह बालकों को समय-समय पर शिक्षा आधारित वेब साइटों के बारे में बताता रहे।

3. **सोशल नेटवर्किंग (Social Networking) :** फेसबुक, ट्वीटर, यू-ट्यूब व व्हटसप ऐसे कुछ सोशल नेटवर्किंग के साधन हैं, जिन्होंने आज के समय को सूचना की दृष्टि से क्रांतिकारी बना दिया है। इनकी मदद से व्यक्ति इस नेटवर्क के दायरे में शामिल व्यक्तियों से आपस में अपने विचार, रुचियां, चित्र, घटनाएं, गतिविधियों व सूचना सामग्री का आदान-प्रदान कर सकता है। यह ऐसी सेवा प्रणाली है जिसमें शामिल लोग आसानी से सम्प्रेषण कर सकते हैं, तुरंत सूचना भेजने के लिए इससे अच्छा माध्यम नहीं हो सकता है। अधिकतर सोशल नेटवर्क की साइटों में उपयोगकर्ता अपने ब्लॉग लिख सकता है, उसे अपने समूह में भेज सकता है तथा दूसरे से प्राप्त ब्लॉगों को खोलकर देख व पढ़ सकता है। इसमें उपयोगकर्ता की निजता व सुरक्षा का भी ध्यान रखा जाता है। वह अपनी इच्छा से अपने समूह का चुनाव करता है, वहीं उसकी प्रोफाइल पर देख सकते हैं। इसमें प्रयोगकर्ताओं की प्रोफाइलों में एक ऐसी जगह की व्यवस्था रहती है, जिसमें उसके सहयोगी तथा वह स्वयं टिप्पणी कर सकते हैं। सोशल नेटवर्किंग के शैक्षिक लाभों को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

(i) सोशल नेटवर्किंग साधनों के सदुपयोग से शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को अधिक प्रभावशाली व उपयोगी बनाया जा सकता है।

(ii) इनकी सहायता से ज्ञान को सृजनात्मक, प्रयोगात्मक, विश्वसनीय व लचीला स्वरूप प्रदान किया जा सकता है।

(iii) इस कम्प्यूटरीकृत साधन से तकनीकी और सामाजिक कौशल का विकास किया जा सकता है।

(iv) शिक्षण में रुचि न रखने वाले बालकों को भी इस तरह के नेटवर्क द्वारा प्रदत्त सेवाओं के विषय में अध्ययन की तरह आकर्षित किया जा सकता है।

(v) इस साधन के उपयोग से शिक्षक के पाठ्यक्रमी संबंधी अनुभवों व अभिरुचियों को विकसित किया जा सकता है।

(vi) इस साधन के उपयोग से बालकों में ज्ञान के प्रति जिज्ञासा व चिन्तनता को विकसित किया जा सकता है।

(vii) सोशल नेटवर्किंग शिक्षण को मनोरंजक बनाती है तथा दिन-प्रतिदिन की घटनाओं को शिक्षण से जोड़ती है।

(viii) इसके माध्यम से एक-दूसरे से सीखने का अनमोल अवसर प्राप्त होता है।

(ix) इस शिक्षण अधिगम साधन में आपसी सहयोग, तालमेल तथा अनुभवों को अर्जित करने की अपार सम्भावनाएं रहती हैं।

(x) सोशल नेटवर्किंग को फेसबुक, ट्वीटर, यू-ट्यूब तथा व्हटसप जैसे संचार साधनों ने बालकों में

इतना लोकप्रिय बना दिया है कि छोटे-से-छोटा बालक भी आज के समय में इनका इस्तेमाल मनोरंजन व सूचना प्राप्त करने के लिए आसानी से कर सकता है।

(xi) सहयोग, तालमेल, भागीदारी, सूचना का आदान-प्रदान, ज्ञान का वितरण, विशेषज्ञता, विषय की समझ व उसे ग्रहण करने की क्षमता का विकास करने में सोशल नेटवर्किंग की उपयोगिता को नकारा नहीं जा सकता है।

फेसबुक, ट्वीटर और यू.ट्यूब (Facebook, Twitter and You Tube) : सोशल नेटवर्किंग के तहत फेसबुक, ट्वीटर और यू.ट्यूब सर्वाधिक लोकप्रिय साधन हैं, फेसबुक ऐसी लोकप्रिय सामाजिक वेबसाइट है, जो पंजीकृत उपयोगकर्ताओं को अपनी प्रोफाइल, वीडियो, ऑडियो, सूचना भेजने व मित्रों से ऑनलाइन संपर्क स्थापित करने का अवसर प्राप्त होता है। 2004 में मार्क जुकरबर्ग ने हरबर्ट विश्वविद्यालय के अध्ययनरत साथियों के लिए सर्वप्रथम इसका उपयोग किया था। 13 साल से ऊपर का कोई भी बालक या व्यक्ति इसका उपयोग कर सकता है। आज पूरी दुनिया में एक बिलियन (One Billion) से ज्यादा बालक व्यक्ति फेसबुक का इस्तेमाल करते हैं। आज इसे दुनिया का सबसे लोकप्रिय नेटवर्क साधन माना जाता है। ट्वीटर का निर्माण मार्च, 2006 में ज़ैक डोर्सी, इवान विलियम्स, बिज स्टोन तथा नोहग्लास ने किया था। इसकी विधिवत् शुरुआत जुलाई, 2006 में की गई थी। आज यह पूरे विश्व में अत्यधिक लोकप्रिय है। यू-ट्यूब को पहले **'पे पाल'** (Pay Pal) के नाम से जाना जाता था। इसको 2005 में विकसित किया गया था। इसको चाड हर्ली, स्टीव चेन और जावेद करीम ने मिलकर विकसित किया था। यह सोशल नेटवर्क एक ऑन लाइन सार्वजनिक सम्प्रेषण साइट है, जिसे गूगल ने 1.65 बिलियन डॉलर में खरीद लिया था। आज इसे लोकप्रिय यू-ट्यूब (You Tube) के नाम से जाना जाता है।

लघु उत्तरीय प्रश्न
(Short Answer Type Questions)

❑ मानचित्र के चयन और प्रयोग में किन बातों का ध्यान रखना चाहिए?

उत्तर : मानचित्र के चयन और प्रयोग में निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए :

(i) कक्षा की परिस्थिति के अनुसार ही मानचित्र का चयन किया जाए।

(ii) इनके चयम व प्रयोग में विषय-वस्तु की स्पष्टता, यथार्थता तथा सूचनाओं को पर्याप्त महत्त्व दिया जाना चाहिए।

(iii) संकेतों (symbols) तथा पैमाने (scale) की दृष्टि से यह सही होना चाहिए, जिससे दूरी, संख्यात्मक और गुणात्मक आंकड़ों का सही चित्रण हो सके।

(iv) इनमें प्रदर्शित बातों पर ध्यान दिलाने के लिए संकेतक (Pointer) का प्रयोग किया जाना चाहिए।

(v) जहां तक सम्भव हो सके मानचित्रों का निर्माण बालकों द्वारा ही शिक्षक की देख-रेख में किया जाना चाहिए।

❑ शिक्षा के क्षेत्र में समाचार-पत्रों की उपयोगिता को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर : समाचार-पत्रों की उपयोगिता को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

(i) समाचार-पत्र बालकों में सृजनात्मक योग्यताओं एवं अभिव्यक्ति योग्यता को विकसित करने में सहायता प्रदान करते हैं।

(ii) विद्यालय में आयोजित की जाने वाली विभिन्न पाठ्य सहगामी क्रियाओं में समाचार-पत्रों की सहायता ली जा सकती है।

(iii) बालकों में कौशल एवं पुनर्बलन को विकसित करने में समाचार-पत्र महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

(iv) पठन या वाचन में जरूरी रुचि पैदा करने में भी समाचार-पत्रों की विशेष भूमिका होती है।